आठवाँ दृश्य ।

स्थान—बर्दवानमें शेरखाँका घर ।

समय—प्रातःकाल ।

[नूरजहाँ अकेली खड़ी हुई दामोदर नदकी ओर देख रही है ।]

नूर०—(लंबी सास लेकर) यह वही बर्दवान है। तो भी कैसा परिवर्त्तन हो गया है ! उस दिनका सुख इस समय भी याद आता है—(लंबी साँस लेकर सिर झुकाये हुए दो चार पग आगे बढ़कर) उस चढ़ती जवानीकी चंचलताको मैंने दबा लिया था। मनको समझा दिया था कि वह बचपनका एक खयाल है। तब मैंने यह नहीं समझा था कि वह प्रवृत्ति उस समय केवल दब ही गई थी, मरी नहीं थी। चिनगारी राखमें ढकी हुई थी—बुझ नहीं गई थी। वह चिनगारी नया ईंधन पाकर फिर धुआँ देने लगी है । भगवान् ! स्त्रीके हृदयको इतना कम-जोर बनाया है !—इस प्रवृत्तिको अब दबा नहीं सकती ?

[शेरखाँका प्रवेश।]

शेर०—हाँ मेहर ! बंगालके सूबेदार कुतुब बर्दवान आ रहे हैं। उनकी अभ्यर्थना करनेके लिए जा रहा हूँ।

नूर०—(विस्मयके साथ) क्यों ! तुम उनके पास जा रहे हो ?

शेर०—क्या !—तुमको आश्चर्य हो रहा है ! वे सूबेदार हैं ! और मैं बर्दवानका एक इज्जतदार उमराव हूँ। उनकी अभ्यर्थना नहीं करूँगा ?

नूर०—याद है पाण्डुयाकी वह रात ?

शेर०—याद है मेहर।

नूर०—फिर भी जा रहे हो ?

शेर०—हाँ, तब भी जा रहा हूँ।

हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर सीरीजका ३० वाँ ग्रन्थ।

नूरजहाँ।



सुप्रसिद्ध नाटककार

स्वर्गीय बाबू द्विजेन्द्रलाल रायके

बंगला नाटकका हिन्दी अनुवाद।



अनुवाद-कर्त्ता—

पण्डित रूपनारायण पाण्डेय।



प्रकाशक,

हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय,

हीराबाग, गिरगाँव, बम्बई।



कार्तिक १९७७ वि०। नवम्बर १९२० ई०।

द्वितीया वृत्ति।] [मूल्य १=) कपड़ेकी जिल्दका १॥=)

पाँचवाँ अङ्क ।



पहला दृश्य ।

स्थान—काबुलके पास सम्राट्‌का डेरा ।

समय—प्रातःकाल ।

[जहाँगीर और नूरजहाँ ।]

नूर०—जहाँपनाह ! मैं देखती हूँ, आप महाबतखाँके प्रभुत्वको खूब सिर झुकाकर स्वीकार करते चले जाते हैं ।

जहाँ०—नूरजहाँ ! अपनी हालत याद रक्खो ! इस समय महाबतखाँके हाथमें हम हैं । जिसके आगे हाथ जोड़कर मुझे तुम्हारे प्राणोंकी भिक्षा माँगनी पड़ी उसके विरुद्ध अभियोग उपस्थित करना हमें नहीं सोहता ।

नूर०—मैं अभियोग नहीं करती हूँ जनाब ! मैं कहती हूँ कि जहाँपनाह बहुत जल्दी वशमें हो जाते हैं ।

जहाँ०—यह तीखे सत्यका तुम्हारी अपेक्षा मुझे खुद बहुत अधिक अनुभव है !—नहीं तो आज यह दशा न होती ।

नूर०—नहीं ।

जहाँ०—सो चाहे जो हो !—मैं महाबतखाँके शासनमें कोई त्रुटि नहीं देखता । वह हमारे किसी भी काममें बाधा नहीं देता ।

नूर०—बिलकुल नहीं !

जहाँ०—क्यों नूरजहाँ ! हमने काश्मीर जाना चाहा था—गये । काबुलमें आना चाहा था—आये । महाबतखाँ नौकरकी तरह हमारे साथ है ।

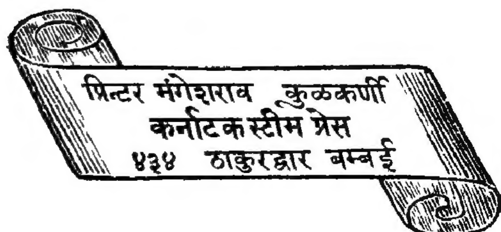
प्रकाशकः—

नाथूराम प्रेमी

हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय,

हीराबाग, पो० गिरगाँव–बम्बई ।





'नूरजहाँ' की समालोचना।



कवि द्विजेन्द्रलालरायद्वारा कल्पित ग्रीकजातिकी हेलेनाकी तरह मुगल-

है। इसका कारण यही है कि सारी ही नायिकाओंकी स्मृति, निरवच्छिन्न यौवनसंभोगके प्रसंगके साथ जटित रहती है, उनके नामके साथ साथ युवावस्थाकी बात मनमें आ जाती है। आत्मा, विलासके पापमन्त्रसे अभिमंत्रित दृष्टीको घुमाये बिना उन नायिकाओंके ऐतिहासिक चित्रकी ओर ताकने नहीं देती, इसी कारण इस जादूकी सृष्टि हुई है। सीताके चरित्रमें पापका चिह्न लेशमात्र नहीं है, इसी कारण सीताका नाम लेनेसे रूप और अवस्थाके संसर्गसे रहित एक देवीमूर्ति ही मानसपट पर अंकित हो उठती है। और, उस मूर्तिके चारों ओर फैले हुए प्रकाशमें अनुभवसे परे अमानुषिक भाव प्रतिफलित होता है।

कवि द्विजेन्द्रलाल रायने जब अपने इस नाटककी भूमिकामें प्रतिज्ञा की है कि हम आदर्श-चरित्र नहीं गढ़ेंगे, तब इतिहास प्रसिद्ध नूरजहाँका आख्यान अवश्य ही ऐसे नाटकके लोक उपयुक्त सामग्री है। कविने इस मोहिनीके चरित्र-चित्रमें कहीं पर इतिहासका उल्लंघन नहीं किया। इतनी बड़ी प्रसिद्ध ऐतिहासिक घटनामें वैसा करना अच्छा भी न होता। आदर्शके गढ़नेमें बहुत कुछ बदलना पड़ता है। मनके माफिक परिवर्त्तन करके काव्यका गढ़ना अपेक्षाकृत सहज काम है। प्रकृतिके द्वारा यथार्थमें जो कुछ हुआ है, उसके मर्मको समझकर, उसके

भीतर छुपे हुए काव्यको लिखकर प्रकट करना ही सर्वथा कठिन काम है। जो सब छोटे छोटे नित्य होनेवाले कार्य है उनके भीतर ही कविताकी सामग्री रहती है; किन्तु बड़े कवियोके सिवा अन्य किसीको वह सामग्री नही सूझती। इसीसे साधारण नवीन कविगण संसारको पददलित करके एकदम आकाशकी ओर ताकते हुए बादल और बिजलीके वर्णनमें ही व्यस्त रहते है। बहुत हुआ तो पृथ्वी परकी घास पर पड़ी हुई ओसकी बूँदोंका बखान कर डालते है।

इस नाटकके काव्यकौशल्यके सम्बन्धमें कवि स्वयं ही एक बात लिख गये हैं कि इस दृश्य काव्यमें ‘स्वगत’ नही है। श्रव्यकाव्यमे बहुत सी बातें कहकर समझा दी जाती है, इसी कारण श्रव्यकाव्यकी अपेक्षा दृश्यकाव्यकी रचना कुछ कठिन है। उस पर अगर ‘स्वगत’ उक्तिके सहारेसे जो सहायता मिलती है, वह भी न रहे, तो फिर उत्तम कौशल (Art) का प्रयोजन बहुत अधिक हो जाता है। कविने उस कौशलको इस नाटकमे सम्पूर्णरूपसे दिखाया है। यह बात इस नाटक-काव्यको पढ़े बिना समझी नहीं जा सकती। समालोचनामें अगर उसे दिखानेकी चेष्टा की जाय तो किसी एक बड़े दृश्यका उदाहरण देकर—अनेक उक्ति-प्रत्युक्तियोंका विश्लेषणकर यह दिखानेकी आवश्यकता होगी कि जिन स्थानोंमें ‘ स्वगत ’ रह सकता था वहाँ उसके न रहने पर भी काव्यका मर्म दुर्बोध्य नही हुआ। इसी कारण इस विचारका भार मै अपने विज्ञ पाठकों पर ही छोड़ता हूँ।

प्रथम दृश्यमें, नूरजहाँ (मेहरुन्निसा) को हम देखते है कि वह स्वामी, कन्या और भतीजीके साथ सुखके स्वर्गमें समासीन है। गहरे विचारके साथ सोचे बिना यह नहीं समझ पड़ता कि उस समय मेहरुन्निसाके मनमे किसी उच्च आकांक्षाका बीज था, या पतिके सिवा किसी अन्य पुरुषकी छाया उसके मनोमुकुरमें प्रतिफलित हो रही थी। अद्वितीय कवि भवभूतिके उत्तररामचरितके प्रथम अंकमे जो अपूर्व नाट्यकौशल्य है वही यहाँ भी देखा जाता है। इस कौशल्यको समझे बिना इस नाटकका पढ़ना ही वृथा है। इसी कारण मै अपने वक्तव्यको और भी साफ करके कहता हूँ।

उत्तरचरित पढ़ते समय पहले ही यह खयाल होता है कि रामचन्द्र इतने प्रगल्भ वाक्योंसे सीताके आगे ही सीताकी महिमाका वर्णन कर रहे हैं ? यथार्थ

प्रेमिक तो कभी ऐसा नहीं करता। गुप्तचरने आकर बादको जो कुछ रामचन्द्रसे कहा, उसे रामचन्द्र बहुत पहलेहीसे जानते थे यह बात हम गुप्तचरके नियोगको देखकर ही समझ जाते है। रामचन्द्रने अच्छी तरह समझ लिया था कि प्रजारंजनके लिए, आज हो या कल हो, उन्हें अपने 'हृदयं द्वितीयं' को छोड देना पड़ेगा। उनका हृदय विषादविषकी ज्वालाओंसे जल रहा था। इसीसे जनकके जानेके बाद उन्होंने अन्त·पुरको नहीं छोड़ा; इसीसे वे बातचीत करते समय उच्छ्वासपूर्ण भाषामें सीताको सिर-ऑखों पर रखनेकी बात कहकर सीताको लज्जित कर रहे थे।

नूरजहॉ अपने मनमें दु.स्वप्न देख रही थी, इसीसे वह सोच रही थी कि इतना सुख असह्य होगा। इसीसे वह वारंवार अपने पारिवारिक सुखका उल्लेख करके इस तरह उसकी आलोचना कर रही थी। इसीसे वह बच्चोंके सौन्दर्यकी सुनहली किरणोंमें अपनेको डुबाये रखना चाहती थी। जो कोई सौन्दर्यके भीतर रहता है, सुखके भीतर रहता है, वह कभी इस प्रकार प्रत्यक्ष भावसे सौन्दर्य और सुखको नही देख पाता। आगरेका नाम सुनकर नूरजहॉका चौक पड़ना अगर इस दृश्यमें न रहता तो भी कुछ हानि न थी। कविने उसे दिखाकर नूरजहॉके मनके भावको विशेषरूपसे स्पष्ट कर दिया है।

मेहरुन्निसाका पति शेरखॉ सरल-स्वभाव, उदारप्रकृति, साहसी, वीर, और धर्म भीरु पुरुष है। मेहरुन्निसा उसी देवताको प्रसन्न करनेकी साधनामें, स्वप्न और छायासे शून्य समाधि प्राप्त करनेकी चेष्टा कर रही थी। उस तर्पणसे देवता तृप्त हो रहे थे। किस छिद्रसे आकर शनैश्चर सिर पर सवार हो जाता है, सो कोई नही जानता; इतने बड़े राजा श्रीवत्स भी नहीं जान सके थे। बालिका मेहरुन्निसाने जहॉगीरके आगे सौन्दर्यके दंभ और जवानीके खयालसे एक लीला-विलास ही तो किया था। वह एक साधारण घटनाके सिवाय और कुछ न था। किन्तु कविने इस नाटकमें यह दिखाया है कि हमारे जीवनकी क्षुद्र रंगभूमिमें जो छोटे छोटे अभिनय हो जाया करते है, उनका विराट्पुरुषके विराट् नाट्यमंच पर खेले जा रहे महानाटकके हरएक अक और हरएक दृश्यसे सम्बन्ध है। चाहे खयालकी धारा हो और चाहे वर्षाकी धारा हो, वह केवल हँसा कर-'प्रकृति' के सौन्दर्यको बढ़ाकर ही नहीं चली जाती; उसके कारण कभी कभी हृदयमें दारुण अग्नि भी भड़क उठती है। कहावत है—शनिकी दृष्टि सर्वनाश

किये विना नहीं छोड़ती। लालसा और उच्च आकांक्षाकी आगसे पतंग बहुत दूर पर था; परन्तु होनहारकी आँधी उसे आगरे उड़ा ले गई।

शेरखाँके समान वीरकी पत्नीके मनमें पापकी छाया छिपी है—इस बातको किसी तरह किसीसे भी जताना मेहरुन्निसाके लिए असंभव था। अत्यन्त विश्वासपात्र सखीके सामने भी ऐसी कलंककी बातको प्रकट कर देना स्वाभाविक नहीं है। तो भी मेहरुन्निसाने आगरेमे आकर एक सखीको बुलाकर और उससे सब बातें खुलासा कहकर सद्बुद्धिका उपदेश चाहा। इस क्षुद्र दृश्यके कौशलमय वर्णनमें कविने समझा दिया कि सुन्दरी मेहरुन्निसाके हृदयके भीतर ऐसी हलचल मची हुई थी कि वह किसी तरह आत्मरक्षा नहीं कर पाती थी। इसी आशासे मेहरुन्निसाने अपनी सखीसे जीका हाल खोलकर कह दिया कि पापकी छाया और दु स्वप्नकी बात, एक बार कह डालनेसे लज्जाके प्रभावसे, शायद क्षीण हो जाय—भूल जाय। पानीके भँवरमें पड़ा हुआ आदमी जैसे तिनकेका सहारा पाकर प्राणरक्षा करना चाहता है, वैसे ही यह मेहरुन्निसाका एक विश्वासपात्र सखीसे सब हाल कहकर उपदेश माँगना है। चतुर्थ दृश्य पढकर देखो, उसकी किसी बातमे कुछ जोर नहीं है, सखीके उपदेशमें भी कुछ विशेषता नहीं है, मेहरुन्निसाकी प्रतिज्ञामे भी तेज नहीं है। किन्तु गंभीर भावसे पढते ही समझमें आजाता है कि नूरजहाँ बाहरसे चाहे जितनी स्थिरता दिखावे मगर उसके मनमें भारी हलचल मची हुई है। बहेलियेके मन्त्रसे चंचल हुई चिड़िया एक बार प्राणपणसे पंख फैलाकर अपने छोटेसे घोंसलेकी ओर चली है। चुपचाप थोड़ेसे शब्दोंमें इस प्रकार हृदयका चित्र अंकित कर देना साधारण क्षमताकी बात नही है।

शेरखाँने जब समझ लिया कि उसका सुख चला गया—तब वह मृत्युको बुलानेके लिए अग्रसर हुआ। प्रथम अंकके अष्टम दृश्यमे इस मर्मस्थलको चोट पहुँचानेवाली घटनाका वर्णन है। जिन बातोंको कहकर शेरखाँ अपनी प्यारी स्त्रीसे बिदा हुआ उन्हें यदि एक स्वतन्त्र कविताके रूपमे कवि द्विजेन्द्रलाल राय लिखते तो वे अपनी मातृभाषाके इस श्रेणीके कविताके भांडारमें एक अमूल्य रत्न छोड़ जाते। भाग्यकी जलाई हुई आगके प्रचण्ड प्रकाशमें प्रकाशित और मर्मवेदनाकी करुणामें सने हुए उस सरस सुकोमल प्रीतिके हताश गीतको मैंने अनेक बार पढ़ा है। उपमाके द्वारा भाव प्रकट करनेमें, प्रीतिकी मधुरतामें और धीरोदात्त भावकी चंचलताहीन कातरतामें वह कविका किया हुआ वर्णन बहुत ही

उत्तम हुआ है। शेरखाँ कहता है–' मैं मनुष्य हूँ–दुर्बल मनुष्य मात्र हूँ। और वह मेरी शुरू जवानी थी। जब आकाश बहुत ही नीला देख पड़ता है, पृथ्वी खूब हरीभरी जान पड़ती है; जब ये नक्षत्र वासनाकी चिनगारियों जैसे और गुलाबके फूल हृदयके रक्त जैसे जान पड़ते है; जब कोकिलाका गान एक स्मृतिके समान जान पड़ता है, मलयपवन एक सुखस्वप्नसा समझ पड़ता है; जब प्रणयीका दर्शन उषाका उदय, चुम्बन सजल बिजलीकी चमक और आलिंगन आत्माका प्रलय जान पड़ता है। उसी चढती जवानीमें मैंने तुम्हारे रूपकी मदिरा पी थी।'

इसके बाद जब शेरखाँ मर गया; तब भी नूरजहाँका हृदय उसका (खुदका) विरोधी था। क्योंकि हम लैलाके मुँहसे सुन पाते हैं कि मेहर पलाऊ चिड़ियाकी तरह स्वयं ही बादशाही अन्त पुरमें आकर फँस गई। लैलाके सन्देह करनेका कारण था, नहीं तो हेम्लेटकी तरह वह बराबर उस अभागिनीके मनमें पिताकी यादको जमाये रखनेकी कोशिश क्यों करती रहती? किन्तु जब नूरजहाँ अपने पिता और भाईकी सुख-सम्पत्ति सम्बन्धी बात सुन कर भी जहाँगीरसे ब्याह करनेके लिए राजी नहीं हुई, किन्तु अन्तको बदला लेनेका मौका पानेकी बातके नवीन प्रकाशको पाकर उत्साहित हो उठी, तब क्या कोई पाठक बालिका लैलाके सन्देह या अनुमानको झूठ समझ सकता है? कभी नहीं। इस बातको विस्तृत भावसे आगे कहता हूँ। नूरजहाँने कहा अवश्य था कि मैं अपने हृदयकी शैतानी वृत्तिके प्रभावको प्रायः दमन कर चुकी थी। किन्तु इस बातका सहज अर्थ ग्रहण करनेसे बदला चुकानेके लिए उसमें विशेष उत्साहका भाव नहीं समझ पड़ता। शेरखाँकी स्त्री भी तो स्त्री ही है। अपने पैरोंके नीचे पड़े हुए भारतके राज्यकी बातको कभी सोचना उसके लिए कुछ आश्चर्यकी बात नहीं है। रंगढंगसे इस बातको समझकर लैला भी नाराज हो सकती है और शेरखाँके समान देवताको याद करके ब्याहके लिए राजी नूरजहाँ भी उस भावको शैतानी प्रवृत्ति कहकर अपने मनकी ग्लानिको प्रकट कर सकती है। लेकिन इसके यथार्थ सिद्धान्तका अनुसन्धान मनुष्यचरित्रकी जटिलतामें करना चाहिए। केवल बदला चुकानेके लिए ही नूरजहाँने ब्याह नहीं किया। मुखसे वह चाहे जो कहे, मगर असल बात और ही थी। जब हम मनको भुलावा देकर कोई काम करते है तब छोटेसे किसी बहानेको ही बना बनाकर दिखानेकी चेष्टा करते है। जहाँगीरके सम्बन्धमें एक दूसरी बात कहकर मैं फिर इसी बातको कहूँगा।

रेवा सुन्दरी, बुद्धिमती, पुण्यमयी, पतिभक्तिमें पूरी और पतिव्रता थी। स्त्रीके इतने गुणोंके बीच उसके प्रतिदिनके गृहस्थीके प्रेमकी आड़में, प्रेमके पूर्वानुरागकी मधुरतासे परिपूर्ण चटकीले प्रेमके अभावको लख लेना किसी भी पतिके लिए सहज नहीं है। किन्तु जिसका चित्त पहलेहीसे लालसापूर्ण है, उसके निकट ये सब गुण नमकसे खाली खूबसूरतीके समान है। शुरू जवानीकी नई दीप्तिमें नेत्रोंकी जो विलासलीला घूँघटके सहसा खुलजानेसे जहाँगीरने देख ली थी, उसे वे कभी नहीं भूल सके। भोगकी तीव्र लालसामें पुण्यमयी पत्नीका संयत प्रेम कभी मधुर नहीं मालूम पड़ सकता। इसी कारण, ऐसी अवस्थामें अनेक लोग हताश होकर शराब पीने लगते है। मै सम्राट् हूँ, मेरी क्षमता असीम है; मै क्या अपने वांछित पदार्थके उपभोगसे वञ्चित रह सकता हूँ ? इस भावने भी जहाँगीरके हृदयमें हलचल डाल दी थी। इससे उन्होंने छलसे, बलसे, कौशलसे जिस तरह बन पडा, अमानुषिक नरहत्या तक कराकर नूरजहाँको प्राप्त किया। लालसाकी प्रबल उत्तेजनामें, भोगकी गहरी साधनामें, पाप और पुण्यको तुच्छ समझ कर जो कुछ पाया जाता है, मनुष्य सर्वत्र उसका गुलाम ही हो जाया करता है। इसीसे बुद्धिमान् जहाँगीरने भी जानबूझकर नूरजहाँकी गुलामीमे अपने और देशके मंगलको मिटा दिया। इसी स्वाभाविकताके कारण पाठकगण पहले जहाँगीरके भयानक पापाचरण पर क्रुद्ध होकर भी फिर उन्हें असहाय देखकर उनका पतन देखकर दुःखित होते हैं। लेकिन नूरजहाँके लिए ? इसका उत्तर आगे दिया जाता है।

नूरजहाकी शैतानी क्या केवल उसकी गौरव-लालसा ही है ? और क्या केवल बदला चुकानेकी सुविधा पानेके लिए ही वह व्याह करनेको राजी हो गई थी ? पुरुषकी मृत्यु कहाँ है, सो प्रायः सभी स्त्रियाँ समझ सकती है। बुद्धिमती नूरजहाँने उद्भ्रान्त जहाँगीरकी अवस्था देखकर स्पष्ट ही समझ लिया था कि सम्राट्की क्षमता उसके पैरोके नीचे है और वह चाहे तो अपनी उँगलीके इशारे पर राष्ट्रनीतिको चला सकती है। नूरजहाँ क्या केवल इसी क्षमताकी तृष्णासे उत्तेजित हो रही थी ? उसके मूलमे क्या भोगकी लालसा नही थी ? लैलाका अनुमान क्या मिथ्या था ? कविने अत्यन्त चतुरताके साथ इन सब प्रश्नोंका उत्तर दे दिया है। मगर हाँ, उसे समझनेके लिए कुछ विचार करनेकी जरूरत जरूर है।

कविने शेरखाँको देवचरित्र कल्पित किया है। लेकिन नूरजहाँ शेरखाँ पर केवल भक्ति ही करती थी; उसे स्त्रीके हृदयसे जीजानसे चाहती नहीं थी। इस बातको

एक जगह खुद नूरजहॉने ही कह डाला है। इसमें आश्चर्यकी बात कुछ नहीं है। अगनरेश कुछ अयोग्य न था, मगर स्वयंवरमें राजकुमारी इन्दुमतीने उसे नहीं स्वीकार किया। इसीसे कालिदास कहते हैं—'नासौ न काम्यो न च वेद सम्यक् द्रष्टुं न सा भिन्नरुचिर्हि लोक।' अर्थात् अगराज क्या कमनीय न था? या इन्दुमती ही परखना नहीं जानती थी? नहीं, अगराज कमनीय भी था, और इन्दुमती भी पुरुषको परखनेमें प्रवीण थी। फिर भी जो इन्दुमतीने इसे ग्रहण नहीं किया, इसका कारण यही है कि संसारमे लोगोंकी रुचि भिन्न भिन्न हुआ करती है।

नूरजहॉके हृदयमें अगर लालसाकी हवा न चलती तो केवल जवानीके गर्वसे या केवल किसी तरहके खयालमें डूबे रहनेसे ही उसके मुँहपरसे कपड़ा न हट जाता। नूरजहॉ ऐसी वैसी लड़कियोंकी तरह चंचल भी नही थी, उसके हृदयमें आत्मसम्मानका ज्ञान यथेष्ट था। वह बुद्धिमती थी। नहीं तो इतने बड़े राज्यका शासन वह न कर सकती। वह बुद्धिमती थी, इसीसे उसने अपने देवताको लेकर गृहस्थीमे सुखी होनेकी प्राणपणसे चेष्टा की थी। उसने आत्मसम्मानकी रक्षाके लिए अपने हृदयसे यथेष्ट युद्ध किया, लेकिन घटनाचक्र उसके अनुरूप नही हुआ। उसने देखा कि वह लगातार होनीके फेरसे मानों एक फंदेमे पड़ती जा रही है। एक ओर आत्मसम्मानकी रक्षाका खयाल था, दूसरी ओर भोगलालसाकी छिपी हुई आग और गौरव कामनाकी हवा थी। ऐसी जगह किसकी हार और किसकी जीत होना स्वाभाविक है, सो किसीको बताना नही पड़ेगा। जो स्वाभाविक था वही हुआ। स्वाभाविकता दिखाना ही काव्यका उद्देश्य कहा जाता है। प्रबल आत्मसम्मानके खयालने और लैलाके तिरस्कारने चार साल तक नूरजहॉकी रक्षा की।

साहित्यरथी बंकिमचन्द्रकी भाषामें मैं भी कहता हूँ कि पापके मार्गमें बड़ी ही रपटन है; गिरनेवालेकी गति हर पग पर बढ़ती जाती है। पूर्ण क्षमता हाथमें लेनेके लिए नूरजहॉ प्रतिदिन जो कर रही थी, उसकी भयानकताका अनुमान करके एक दिन वह स्वयं ही कॉप उठी। यह बात नहीं है कि नूरजहॉने लैलाके एक दिन गुस्सेमे आकर कहनेसे पापकार्य करना शुरू किया। बात यह है कि अपने किये पापको 'प्रतिहिंसा' के नामसे ढकनेके लिए—अर्थात् अपने ही मनको भुलावा देनेके लिए—पुण्यमयी लैलाकी बातको उसने अपने लिए नजीर बनाकर खड़ा करना चाहा था। अत्यन्त क्षुद्र, छिपा हुआ, निस्तेज पाप भी यदि एक-

बार प्रश्रय पा जाता है तो वह सारे पुण्यको ग्रस लेता है। इसीसे नूरजहाँ ऐसे बड़े चक्करमें पड़ गई।

समाजतत्त्वके एक अति सूक्ष्म और शिक्षाप्रद सत्यकी बात कहता हूँ। कोई भी जाति (वह चाहे जितनी उन्नत हो) अन्यजातिको (वह चाहे जितनी हीन और दुर्बल हो) हराकर, उस पर पूर्णरूपसे जय प्राप्त तो क्या करेगी, अन्तको स्वयं ही पिछड़ जाती है। इस देशमें आर्यों और अनार्योंके भिड़नेके बादसे हमारी जो दुर्दशा हुई है उसके मूलमें भी यही सत्य देख पड़ता है। समाज-तत्त्वके ज्ञाता स्टुअर्ट ग्लेनीकी भाषामें यह बात इस तरह कही गई है —

"In the conflict of races, the conquerors are often the conquered, becoming merged in and modified by those whom they physically subdue. This is a truth of great sociological importance."

इस फलको न होने देनेके लिए इस समयके विजेता लोग बहुत कुछ चेष्टा कर रहे है, लेकिन भाग्यचक्र मनुष्यकी चालाकीको हटाकर अपनी इच्छा-के अनुसार ही घूम जाता है। विस्तृत समाजके सम्बन्धमे जो सत्य है वही हर मनुष्यके इतिहासके सम्बन्धमे भी सत्य है। क्योंकि मनुष्योंका समूह ही तो समाज है।

इस नाटकमें यह बात नही है कि नूरजहाँ प्रतिदिन अपनी बुद्धिसे एक नीति-जाल (यहाँ पर प्राचीन मतानुसार पालिसी policy के अर्थमे ही नीतिशब्दका प्रयोग किया गया है) रचकर प्रतिहिंसाके लिए उसे डालती और समेटती थी। क्यो कि असल बात भी यह नही है। अपने सुखकी मात्रा बढ़ानेमें, और अपनी क्षमताको अखण्ड बनानेमें, उसने जितना पाप किया, एकदिन उसे सोच कर वह आप ही चौक उठी थी। उसके उद्भ्रात पति जहाँगीरने जिस दिन मदिरा और आनन्दसे विह्वल होकर पूछा कि 'नूरजहाँ, तुम देवी हो या मानवी।' उस दिन नूरजहाँने भर्राई हुई आवाजमें कहा था—'मै दानवी हूँ!' इसी तर-हकी कुछ बातें, नूरजहाँके चरित्रके सीमाहीन सागरमें छोटे छोटे टापुओंकी तरह दिखाई देकर उस सागरके विस्तारको दिखा देती है। नहीं तो उसके वारपार-हीन फैलावका अनुमान ही नहीं किया जा सकता।

नूरजहाँ अगर बदला चुकानेके लिए ही सब काम कर रही थी, और गौरवके लिए ही लालायित थी, तो वह महाबतखाँसे परास्त होकर रो-धोकर अपने

प्राण बचानेकी चेष्टा न करती। जो लोग क्षमताके लिए पागल हो रहे है, प्रतिहिंसाके लिए उत्तेजित हो रहे हैं, वे अत्यन्त साधारण हारमें भी आत्म-हत्या तक कर डालते हैं। कवि द्विजेन्द्रलाल अगर इस अवस्थामें एकबार नूर-जहाँको नही रुलाते, तो हम लोग इस विषम जटिल चरित्रको अच्छी तरह कभी नहीं समझ सकते।

नूरजहाँ सुन्दरी थी, नूरजहाँ मोहिनी थी। उसके रूपके मोहके फेरमें पड़कर एक समय सारा भारत साम्राज्य चकरा रहा था। जिस दिन होनीकी निर्दय फूँकसे वह जादू जाता रहा, तब अपने ही उठाये हुए चक्करमें पड़कर नूरजहाँने क्षमताके तृणमात्रको पकड़कर खड़े होना चाहा, लेकिन वह खड़ी नही हो सकी—उसी दिन पागल हो गई। तीव्र लालसाका * यही अन्तिम फल है। उसका ऐसा ही परिणाम होता है। यह बात मैंने माड्सलेके मस्तिष्करोगसे संबध रखनेवाले ग्रन्थमें भी लिखी देखी है। इसी स्थान पर हम अभिमानिनी लैलाका नया रूप देख पाते है। मुगलपरिवारमें रहकर लैलाने जो अभिज्ञता प्राप्त की थी, उससे उसने समझ लिया था कि सम्पत्तिसे मिलनेवाले सुखका अर्थ ही अपवित्रता है। इसीसे वह उस दुर्दिनमें—उस दुःखके दिनमें अपने अन्ध असहाय पति और सम्पत्तिहीना दुखिया माताको छातीसे लगाकर सुखी हो सकी। नूरजहाँ नाटककी समालोचनामें मैंने केवल नूरजहाँकी ही बात कही है। वही मेरा वक्तव्य भी था। क्योकि अन्य चरित्रोंकी चर्चा नूर-जहाँके चरित्रकी पारिपार्श्विक अवस्था मात्र है।

प्रत्येक अककी टीका-टिप्पणी किये विना हरएकका हर एक अकसे जो संयोग है सो नही समझाया जा सकता। किन्तु मेरी समझमें, मैंने जितना कहा है उसीसे यह अच्छी तरह स्पष्ट हो गया है कि कविने नूरजहाँके चित्रमें जो चरित्रकी जटिलता अकिन की है उसकी प्रत्येक रेखा, वर्णकी विचित्रता और भावके उद्बोधनके द्वारा, सजीव भावसे प्रस्फुटित हो रही है। कविने इस

---

* मुगलोंके अन्तःपुरकी तीव्र लालसाकी बात मैंने वारंवार कही है। लेकिन वहाँकी विद्याचर्चाकी बात नहीं कही। मुगल-परिवारमें सभ्यता और विद्या-चर्चा पूर्णरूपसे थी। दाराने उपनिषदोंका अनुवाद किया था। ग्रीकविद्याके पण्डित भी मुगलोंके दरबारमें उपस्थित रहते थे। इसी कारण इस प्रन्थमें शाहजहाँके मुखसे प्लेटोके ग्रन्थकी बातोंका कहलाना अस्वाभाविक नहीं है।

नाटकमें मनुष्यचरित्रविश्लेषणकी जो असाधारण क्षमता दिखाई है वह उनके अपूर्व रचनाकौशलसे मिलकर सोनेमें सोहागा होगई है।

श्रीविजयचन्द्र मजूमदार।

नूरजहाँकी फुटकर आलोचनायें।

(१)

स्वयं ग्रन्थकर्ता (द्विजेन्द्रलाल राय)।—"मेरे लिखे हुए अन्य ऐतिहासिक नाटकोंसे नूरजहाँ नाटकमे कई विशेषतायें है। पहली विशेषता यह है कि हमने इस नाटकमें देवचरित्र अंकित करनेकी चेष्टा नहीं की, किंतु दोषगुणसमन्वित मनुष्यचरित्र अंकित करनेका प्रयत्न किया है। दूसरी विशेषता यह है कि इस नाटकमे बाहरके युद्धकी अपेक्षा भीतरका युद्ध दिखलानेमे ही हम अधिक प्रयत्नशील रहे है। ऐसा नहीं है कि पहले हमने इस प्रकारका प्रयत्न ही नहीं किया; नहीं, अहल्या, सूर्यमल्ल, शक्तसिंह, मेहरुन्निसा और औरंगजेब आदि पात्रोंके चरित्रमे यह अन्तर्युद्ध थोड़ा-बहुत अवश्य दिखलाया गया है, परन्तु नूरजहॉमें उसे दिखानेका जितना प्रयत्न किया है, उतना पहले कभी नही किया। नूरजहॉके मनके ऊपर होकर प्रवृत्तियोंकी एकके बाद एक लहर चली जाती है; पॉच छह प्रकारके भावोंने आकर उस पर क्रमसे अधिकार किया है। इसीसे उसका चरित्र विशेष जटिल और दुर्बोध हो गया है। तीसरी विशेषता यह है कि हमने इस नाटकमे दूसरे किसी व्यक्तिके सामने किसीसे भी 'स्वगत' भाषण नहीं कराया है। एक आदमीका इस तरह जोरसे कहना—जिसे कि सारे श्रोता तो सुन सकते है, केवल उसके पास खड़े हुए नट-नटी नहीं सुनते है—हमको तो एक तरहसे हास्यकर ही मालूम होता है।"

(२)

श्रीयुत सौरीन्द्रमोहन मुखोपाध्याय।—"नूरजहॉ मनस्तत्त्वकी सुगभीर आलोचनासे परिपूर्ण है। मानवचरित्रके सूक्ष्म निपुण विश्लेषणने नूरजहॉके चरित्रको अच्छी तरह प्रस्फुटित कर दिया है। बंगलाके और किसी भी नाटकमें इस प्रकारका चरित्रविकाश नहीं देखा गया।"

(३)

स्वर्गीय कविवर वरदाचरण मित्र सी.एस.।—"द्विजेन्द्र जैसे सरल प्रकृतिके लोग जटिल दुर्बोध चरित्र अंकित ही नहीं कर सकते। द्विजेन्द्रबाबू अपने नूरजहाँ-चरित्रको जो जटिल और दुर्बोध कहते है सो यह उनका भ्रम है। नूरजहाँ-चरित्र दुर्बोध नहीं हुआ-वह सर्वत्र ही सुस्पष्ट है। अर्थात् विजयबाबूने जो नूरजहाँ-चरित्रकी जटिलताका विश्लेषण किया है, उसे बहुत गहरा विचार करके आविष्कृत नही करना पड़ता। नूरजहाँके अपने मुँहसे कहने पर भी—आत्मप्रतारणा करने पर भी—यह बात सहज ही समझी जाती है कि उसने बदला लेनेके लिए सम्राट्से विवाह नहीं किया, उसके मनमे क्षमता और गौरवकी आकाक्षाके साथ साथ भोग-लालसा ही गुप्त रूपसे बलवती थी। द्विजेन्द्रकी सरलता और कलाकुशलताने इस बातको समझनेका मार्ग सर्वत्र ही सुगम कर दिया है।"

(४)

श्रीयुत नवकृष्ण घोष।—"...कविका यह कथन सर्वथा भित्तिहीन न होने पर भी कि 'जनसाधारणको विशेष कर किसी किसी समालोचकको यह बहुत ही दुर्बोध प्रतीत होगा' नूरजहाँका चरित्र रसग्राही पाठकोंके निकट उपभोग्य समझा गया है, उसका खूब आदर हुआ है और इस नाटककी रचना करके द्विजेन्द्रलाल नाट्यशिल्पीके श्रेष्ठ आसनको पानेके योग्य समझे जाकर साहित्यसंसारमें अभिनन्दित हुए है।

इस नाटकमें यद्यपि कविने किसी भी नीतिके प्रचारके उद्देश्यसे लेखनी धारण नहीं की है, तथापि स्वजाति और स्वदेशकी उन्नतिके मार्गमें जो सब विघ्न थे और जो उनके हृदयमे व्यथा पहुँचाते थे, वे प्रसंगानुसार उनकी लेखनी द्वारा पात्र और पात्रियोंके मुखसे स्वतः ही प्रकाशित हो गये हैं। कुछ उदाहरण लीजिए।

कर्णसिंह—जब देखता हूँ कि महाबतखाँके समान धर्मात्मा कर्मवीर व्यक्तिको कुछ आचारभेदके कारण हम अपना कहकर, जातिके भीतर लेकर, गले नहीं लगा सकते, तब समझमें आ जाता है कि हम लोगोंका अधःपतन क्यों हुआ है। जहाँ जीवन है, वहाँ वह बाहरकी चीजको खींचकर अपना लेता है और जहाँ मरण है वहाँ वह खुद ही सौ टुकड़े होकर इधर उधर बिखर जाता है।

कर्ण०—इस साम्राज्य पर हम हिन्दुओंका फिर अधिकार हो जायगा, तो भी हम उसे बनाये न रख सकेंगे, । कारण, मैने सोचकर देखा है कि जब तक हमारी जातिके लोग मनुष्य न बन सकेंगे, तबतक हिन्दू-साम्राज्य विकार-ग्रस्त पुरुषका स्वप्न ही है ।

पात्र-पात्रियोंके मुखसे कविने दो चार सरल सत्य और नीतिकी बातें भी इस ग्रन्थमें कहलाई है.—

खादिजा—साम्राज्य !—बाहरकी सम्पत्तिके लिए मनुष्य इतना लालायित है ! वह नहीं देखता कि प्रत्येक मनुष्यके ही भीतर एक अतुल सम्पत्ति अनादरके भावसे पड़ी हुई है ।

रेवा—हम हिन्दू है । हमारी जातिने दूसरोको बॉटनेके लिए ही जन्म लिया है । भला बतलाओ, यह भाररतवर्ष भी हमने इसी तरह तुम्हारे हाथमे क्या नहीं दे दिया ? हमारी आशा यहॉ नही है मेहर, हमारी आशा और भरोसा (ऊपरकी ओर देखकर) वहॉ है ।

यह रेवा (मानसिंहकी भगिनी, जहॉगीरकी हिन्दू महिषी) का चरित्र द्विजेन्द्रलालकी अपूर्व सृष्टि है । प्रतापसिंह नाटकमे हम रेवाका सबसे पहले दर्शन करते है । उक्त नाटकके प्रथम अकके पंचम दृश्यमें नाट्यकारकी अमर लेखनीकी कितनी ही रेखाओसे रेवाका चित्र ऐसा सुन्दर और उज्ज्वल बन गया है कि वैसा चरित्र-विकाश चाहे जिस सर्वोत्तम नाट्यशिल्पी की श्लाघाके योग्य होकर अभिनन्दित हो सकता है । नूरजहॉ नाटकमे रेवाचरित्रका वह रेखाचित्र चित्तहारी वर्णोंके मम्पत्तिसे और भी उज्ज्वल भावसे विकशित हो उठा है । पहलेहीसे, विशेषकर द्वितीय अकके पंचम दृश्यमे हम रेवाचरित्रका महिमामय स्वातन्त्र्य हृदयंगम करके विस्मित आर विमुग्ध हो जाते है । नाटकमे सर्वत्र ही रेवाचरित्रका वह गौरव और तेजोमय माधुर्य्य देदीप्यमान है । ''

द्विजेन्द्रलालका नाट्यसाहित्य।



हमारा विश्वास है कि द्विजेन्द्रलालकी प्रतिभाका स्वरूप समझनेके लिए अभी और भी कुछ समय लगेगा। अब भी बंगालने उन्हें यथार्थरूपसे नही समझा। जो लेखक किसी नये ढंग या स्टाइलके चलानेवाले होते है, सर्व-साधारणमें प्रतिष्ठा प्राप्त करनेमे उन्हें कुछ अधिक समय लगता ही है। जो पाठकोंकी रुचिके अनुसार खाद्य जुटाया करते हैं, अथवा किसी सामयिक भावके ऊपर निर्भर होकर लेखनी चलाते है, वे बहुत थोड़े ही समयमें प्रशंसित और परिचित हो जाते है। जगद्विख्यात कवि शेक्सपियरकी अनन्यसाधारण प्रतिभाका भी पहले उनके देशवासियोंद्वारा आदर नहीं हुआ था। द्विजेन्द्र-लालकी भी यही अवस्था है। हम द्विजेन्द्रलालकी प्रतिभाको अच्छी तरह समझ सके है, इस बातका गर्व नहीं करते, परन्तु इतना आत्मप्रसाद हमें अवश्य है कि, समझनेकी यथासाध्य चेष्टा करते है और चेष्टा करके भी जो नहीं सम-झते उसके सम्बन्धमें व्यर्थ वागाडम्बर नहीं करते।

द्विजेन्द्रलालने इस देशके जितने उपकार किये है उनमें एक यह है कि भविष्यत्की पीढीके लोग उनकी रचनामें इस देशके राष्ट्र, समाज, धर्म और नीतिका एक स्थूल चित्र स्पष्ट रूपसे देख सकेगे। यदि केवल सन्, तारीख और जन्ममृत्युकी फेहिरिस्त ही प्रकृत इतिहास नहीं है, तो कहना होगा कि कविवर वर्तमान भारतके एक बहुत ही प्रवीण इतिहासलेखक थे। यदि हम यह कहें कि यह गुण हमारे यहॉके किसी भी नाटककारमे नहीं है तो कुछ अत्युक्ति न होगी।

द्विजेन्द्रलाल सर्व साधारणमे हॅसी-मजाकके कविके रूपमें ही अधिक प्रसिद्ध हैं। यह सच है कि वे केवल हॅसी-मजाककी कविताके द्वारा ही बंग-साहित्यमें अमर हो गये है, किन्तु नाटक, प्रहसन, गान आदि विषयोंमें भी उनकी अनन्यसाधारण प्रतिभाका यथेष्ट परिचय मौजूद है। इस छोटेसे लेखमें उनकी सर्वतोमुखी प्रतिभाका परिचय देना संभव नहीं है; किन्तु यदि सुयोग मिला तो मै एक दिन यह दिखलानेका साहस करूंगा कि हॅसीके

गानोंमें, नाट्यसाहित्यमे, व्यंग्य कवितामें और जातीय भावोंको जिलानेमें, कमसे कम बंगालमें तो और कोई भी लेखक द्विजेन्द्रलालकी जोड़का नहीं हुआ। वे बंगसाहित्यके भाण्डारमें ऐसी चीजें दे गये हैं जैसी उनके पूर्वमे और कोई भी नहीं दे सका था।

द्विजेन्द्रलालकी रचना कवित्वसे कमनीय, मौलिकतासे उज्ज्वल, विशुद्ध रुचिपरायणतासे मनोज्ञ और सद्भावोंसे परिपूर्ण है। वे कवि, परिहासरसिक, दार्शनिक, समालोचक, प्रबन्धलेखक और नाट्यकार आदि सभी कुछ थे।

* * * *

द्विजेन्द्रलालके नाटक साहित्यभण्डारकी बहुमूल्य सम्पत्ति है। यदि उनकी कोई सर्वप्रधान अक्षय कीर्ति है तो वह यही नाटकसमूह है। बंगालका कोई थियेटर अब तक भी इस योग्य नहीं हुआ है कि उनके इन सब नाटकोंको भली भाँति खेल सके। जिन दो चार अभिनेताओंको उन्होंने स्वयं सिखलाया था वे ही उनके नाटकके किसी किसी जटिल चरित्रका अभिनय करके सर्वसाधारणके श्रद्धाभाजन हुए है; किन्तु और और अभिनेताओने तो—जो केवल तालियोकी ध्वनि सुननेके लिए या व्यवसायके लिए नाटक खेलते है—नाट्यरसानभिज्ञ श्रोताओकी अमार्जित रुचिके अनुकूल अभिनय करके, उनकी चरित्रसृष्टिके सौन्दर्य और वैचित्र्यको मानों नष्ट ही कर डाला है। इस लिए जो लोग केवल रंगभूमि पर ही उनके नाटकोंसे परिचित हुए हैं, वे उनके नाटकोंके सौन्दर्य और अपूर्व विशेषत्वको नहीं जान सकते।

किसी सामयिक भावको लक्ष्य करके द्विजेन्द्रके नाटक नहीं लिखे गये, तो भी वर्तमानकाल जो कुछ चाहता है, वह उनके नाटकोंमें मौजूद है। जो ग्रन्थ केवल किसी सामयिक भावके ऊपर भित्ति स्थापित करके रचे जाते हैं उनकी गणना स्थायी साहित्यमें नहीं की जा सकती। तब तक उस सामयिक भावके प्रवाहका अस्तित्व रहता है, केवल तभी तक उन ग्रन्थोंका आदर होता है।

यद्यपि उन्होने किसी तात्त्विक बातके प्रचारके लिए नाटक नहीं लिखे, तो भी बहुतसे तत्त्व सरल और स्वाभाविक रूपसे उनके नाटकोंमें आप-ही-आप व्यक्त हो गये है। वास्तवमें नाटक, नाटक ही हैं; वे संहिता, इतिहास, पुराण या दर्शनशास्त्र नहीं है। यदि नाटकमें शास्त्र, पुराण, दर्शन या इतिहास रहते भी हैं, तो गौणरूपसे। नाटकका नाटकत्व ही एक मात्र लक्ष्य है।

उन्होंने व्यवसायके लिए अथवा अभिनयके ही लिए नाटक रचना नहीं की। इस व्यवसायके लिए नाटक लिखनेके कारण श्रेष्ठ नाटककार गिरीशचन्द्रका भी कई बार पतन हुआ है; इस व्यवसायके कारण ही माननीय अमृतलाल वसुका पदस्खलन हुआ है और इस व्यवसायके कारण ही इस समय कितने ही नीचे दर्जेके नाटककार नाट्यजगतमें बड़ी गड़बड़ मचा रहे हैं।

द्विजेन्द्रलालके नाटकोंने भाषाकी मधुरता, चरित्रविश्लेषणकी निपुणता, दृश्योंके समावेशकी कुशलता, घटनापरम्पराकी द्रुतता, सरस विवृति, संगीतमे नये ढंगके रागों और रागनियोंके सन्निवेश, उपाख्यान भागकी मौलिकता आदि अनेक गुणोसे नाटकजगतमें सर्वोपरि स्थान प्राप्त किया है। यहॉ तक कि उनका कोई कोई नाटक तो सभी देशों और सभी कालोंमें स्मरणीय और आदरणीय होनेके योग्य है।

उन्होने नाटकमे 'स्वगतोक्ति' न आने पावे, इस बातकी चेष्टा की थी। दो अभिनेता रंगभूमि पर खड़े होकर अभिनय कर रहे हैं, इतनेमें और एक पात्र उच्चस्वरसे अपने गोपनीय मनोभाव प्रकट करता है; सारे दर्शक उसे सुनते है, केवल पासमें खड़ा हुआ अभिनेता ही उसे नहीं सुन पाता है,—यह बहुत ही अस्वाभाविक और हास्यकर बात है। द्विजेन्द्रलालने बड़ी ही कुशलतासे इस ' स्वगतोक्ति ' को अलग करके, नाटकके व्यक्तियोंकी परस्परकी बातों और कामोंमेंसे ही बहुत ही संक्षेपमें और बहुत ही निपुणताके साथ उनके मनोभाव प्रकट किये है। यह ' स्वगतोक्ति ' की पद्धतिको उड़ा देनेका प्रयत्न साहित्यमे एक बिलकुल ही नई बात है। उनके नाटकोंने बहुतसे अभिनेताओंको ' अर्थपूर्ण दृष्टि ' डालना और ' अर्द्धस्वगत ' बात करना सिखलाया है।

द्विजेन्द्रलालने नाटकोंमें भी अन्तःप्रकृतिके साथ सम्बन्ध रखकर बहिःप्रकृतिका वर्णन किया है। इससे उनके वर्णन बहुत ही प्रासंगिक और हृदयग्राही हो गये हैं। बहिःप्रकृतिका सौन्दर्य जिस व्यक्तिविशेषके चित्त पर जुदी जुदी अवस्थाओमे जुदे जुदे रूपमें अनुभूत होता है, इससे उसीका परिचय पाया जाता है और फलतः तद्द्वारा यथार्थ ही प्रकृति-दर्शन–ज्ञान उत्पन्न होता है।

उनके ऐतिहासिक नाटक बहुत ही सावधानीसे लिखे गये है। किसी भी स्थानमें उन्होने इतिहासका सर्वथा उल्लंघन नहीं किया है। जहॉ इतिहास-लेखक चुप है, केवल उसी स्थान पर उनकी मोहिनी कल्पनासे अतिशय निपु-

णताके साथ रंग भर दिया है। नाटक इतिहास नहीं हैं; किन्तु ऐतिहासिक नाटक इतिहासको सर्वथा उल्लंघन भी नहीं करते है, इस बातको वे अच्छी तरह जानते थे।

वे मानवचरित्रके सारे पहलुओंको और सारी वृत्तियोंकी क्रियाओंको दिखानेमें चतुर थे। किसी किसी स्थानमें उत्कृष्ट साधुचरित्रके भीतर भी दो एक दुर्बलतायें दिखाकर और असाधुचरित्रके भीतर भी दो एक महत्त्वके पहलू दिखलाकर, उन्होंने उन चरित्रोंको स्वाभाविकतामें अपूर्व बना डाला है।

अनेकानेक गुणोंके भीतर कहाँ कौन पाप छुपा हुआ है और आगेका घटनाओंके घात-प्रतिघातमे पड़कर वही अन्तमें किस प्रकारकी अचिन्तितपूर्व परणति लाभ करके सारी अवस्थाओंको उलट पलट कर देता है—इस बातको वे असाधारण दक्षताके साथ दिखला गये है। और अनेक दोषोंके भीतर कहाँ एक महत्त्वका बीज छुपा हुआ है, अनुकूल परिस्थितियोंके मिलनेसे वह किस प्रकार बढकर, मनुष्यको धीरे धीरे देवता बना देता है, यह भी उन्होंने अंकित किया है। मानवचरित्रके जो सब गुणदोष दूसरोंको सहजमे नहीं दिखलाई देते, द्विजेन्द्रलाल उनकी क्रियाओं और प्रतिक्रियाओंको स्पष्ट रूपसे दिखा सकते थे। इस प्रकारके चरित्र-चित्रणसे समाजका भी बहुत उपकार होता है। बहुधा ऐसा होता है कि मनुष्य अपने हृदयके किसी कोनेमें छुपे हुए एकाध पापको नष्ट करनेका पहले जो असावधानीसे कोई प्रयत्न नहीं करता है किन्तु अन्तमें वह देखता है कि घटनाओंके चक्करमें पड़कर उसी छोटेसे पापके बीजने ही समय पर महाविषवृक्ष बनकर अपनी शाखाओं और पत्रपुष्पोंसे उसके सारे हृदयको ढक रक्खा है। मनुष्यके भीतर जो देवों और असुरोंका युद्ध होता है उसे उन्होने बहुत ही स्पष्टतासे दिखलाया है और इस विषयमें उन्होंने आश्चर्यजनक सफलताके साथ महाकवि शेक्सपियरका अनुकरण किया है। अन्तर्विरोधको पुटपाट यंत्रमें ढकी हुई गर्मीके समान तीव्रताके साथ प्रदर्शित करना ही बड़ी भारी चतुराईका काम है। इसीलिए, बंगला भाषाके नाट्यजगतमें नूरजहाँ, चाणक्य और औरंगजेबकी चरित्र-सृष्टि अपनी तुलना नहीं रखती। और भी अनेक चरित्रोंम उनकी इस असाधारण शक्तिका परिचय मिलता है; परन्तु शाहजहाँ नूरजहाँ और चन्द्रगुप्त इन तीन नाटकोंमें इस प्रकारका चरित्र-चित्रण अधिक है।

वे अपने नाटकोंके दो एक दृश्योंमें अद्भुत महत्त्वके चित्र अंकित करते थे, जैसे सिकन्दर, शेरखॉ, शाहवाज आदिके चित्र ।

जैसा कि प्रायः नीचे दर्जेके नाटकोंमें देखा जाता है उन्होंने अपने किसी भी नाटकमें हास्यरसोत्पादनके लिए विदूषकके चरित्रका चित्रण नहीं किया, किन्तु प्रतिदिनकी स्वाभाविक बातों और स्वाभाविक घटनाओंके भीतरसे ही हास्यरसको जमानेका प्रयत्न किया है । जैसे, वाचाल, पृथ्वीसिंह आदि। किन्तु हमें यह कहना पड़ेगा कि ये सब हास्य जैसे चाहिए वैसे नहीं जम सके।

द्विजेन्द्रलालके नाटक तीन भागोंमे विभक्त हैं--सामाजिक, ऐतिहासिक और पौराणिक । उनके प्रहसनोंको भी सामाजिक विभागमें गिनना चाहिए । क्योंकि उन्होंने प्रहसनोंके द्वारा समाजसस्कारका ही प्रयत्न किया है । समाजके कोनों कोनोमें, कहॉ कहॉ क्या क्या कूड़ा-कचरा पड़ा है, उसे उन्होंने सूक्ष्मतासे टटोल-टटोल कर दिखलाया है और केवल दिखलाया ही नहीं है,-कुशलतासे उसे दूर करनेका—संशोधनका उपाय भी इशारोंसे बतला दिया है।

कविने नीतिशास्त्रके मूल सूत्रोंके समान संक्षेपमें केवल तात्त्विक उपदेश नहीं दिया है । बहुत समयके बाद अब इस मोटी बातको बहुत लोग जान गये है कि जो लोग समाजसुधारके लिए कटिबद्ध होकर चिल्लाते हैं अथवा बैठकखानोंमें तकियेके सहारे लेटकर और हुक्केकी नलीको मुँहमें दबाकर दुःख और आक्षेप किया करते है, उनकी अपेक्षा समाजसुधारके काममें कवियों और लेखकोंका प्रभाव बहुत अधिक पड़ता है। यहॉ इस बातके कहनेमें भी हम समझते हैं कोई अत्युक्ति न होगी कि संहिताकारकी अपेक्षा रामायणरचयिताके द्वारा इस संसारका अधिक उपकार हुआ है । केवल नीरस और शुष्क उपदेशोंसे वैसा कुछ काम नहीं होता । बालशिक्षा नामक प्रारंभिक पुस्तकमें ही हम ' चोरको सब बुरा कहते हैं ' , झूठ नहीं बोलना चाहिए ' आदि अनेक उपदेश पा चुके हैं । किन्तु उपदेशको जब तक दृष्टान्त द्वारा सजीव और प्रत्यक्षरूपसे न दिखलाया जाय तब तक वह केवल उपदेश ही रहता है, उसे सहज ही जीवनमें परिणत करनेका सुभीता नहीं होता ।

यह मानना पड़ेगा कि वास्तव जगतसे सर्वथा भिन्न न होने पर भी कवियोंका एक एक जुदा जुदा जगत् होता है। कविके कल्पनालोकको, अर्थात् उस विचित्र जगत्को वास्तवके समान अच्छी तरह ग्रहण करनेके लिए बहुत बड़ी विचारशक्तिकी आवश्यकता है । समालोचना करते समय इस मोटी और बहुत ही

आवश्यक बातको भूलकर किसी किसी समालोचकने द्विजेन्द्रलालके नाटकोंके सम्बन्धमें अनेक स्थलों पर अविचार किया है। जब जिस पुस्तककी समालोचना हो, समालोच्य चरित्रोंका विचार उस पुस्तककी वर्णनीय अवस्था और घटनापरम्पराके भीतर होकर ही करना चाहिए। बंकिमचन्द्रकी ‘ सूर्यमुखी ’ और शेक्सपियरके हेम्लेट, किंग लियर, आदि चरित्र इसमें सन्देह नहीं कि बहुत ही असाधारण है, क्योंकि वैसे चरित्र सर्वत्र सुलभ नहीं है; किन्तु असाधारण होने पर भी वे कुछ अस्वाभाविक नहीं हो गये। बहुत लोग किसी चरित्रमें कुछ नूतनता और असाधारणता देखते ही उसे असंगत और अस्वाभाविक कह बैठते है। यह उनकी वड़ी भारी भूल है

समाजकी अवस्था पूर्वकालमे एक प्रकारकी थी, वर्तमानमे अन्य प्रकारकी है और भविष्यतमें और एक प्रकारकी होगी। अर्थात् समाजकी अवस्था परिवर्तनशील है। किन्तु इससे, मनुष्यकी चिरन्तन चित्तवृत्ति कभी रूपान्तरित नही होती। पहले इसी बातका सबसे अधिक विचार करना चाहिए कि चित्तवृत्तिकी किया जुदे देशकाल और पात्रोमे प्रयुक्त होनेसे उसका फल कैसा होता है। जैसे—दया दया ही रहती है, रूपान्तरित होकर हिंसावृत्तिमें परिणत नही होती; किन्तु देशकालपात्रकी विशेषतासे उसकी क्रिया अवश्य ही कुछ भिन्न आकार धारण कर सकती है। यह दया मनुष्यकी एक साधारण वृत्ति है, यह मनुष्यमें सदासे है और सदा रहेगी, किन्तु यदि इस समय हम दधीचि या हरिश्चन्द्रके समान दाता ढूँढनेके लिए जावे तो न मिलेंगे। प्रकृतिके चारो ओरके आवेष्टनोंमे अवस्थान्तर होनेसे अर्थात् परिस्थितियोंके बदलनेसे मनुष्योंके संस्कार परिवर्तित होते है। इन्हीं परिवर्तनोंके प्रति लक्ष्य रखकर नाटक लिखना होगा आर समालोचकोंको भी इन्हें अच्छी तरह सावधानतासे समझ लेना होगा। नहीं तो वर्तमान समाजमें पुराने आदर्श और पुराने समाजमे वर्तमान आदर्श अंकित करनेसे नाटक स्वतःही अस्वाभाविक हो जायँगे। द्विजेन्द्रलालके नाटकीय आदर्श इस समयके साँचेमें ढले हुए है। इस लिए, उन सब चरित्रोंको समझनेके लिए, इस समयके भीतरसे ही विचार करना चाहिए।

इस जगतमे सहसा यह नही कहा जा सकता कि ‘ यह हो सकता है ’ और ‘ वह हो नही सकता ’ और क्या क्या हो सकता है और क्या क्या नहीं, इसकी एक लम्बी सूची भी नहीं बनाई जा सकती। देखना होगा यह

कि नाटकमें जिस घटनाका वर्णन है, उसमें वर्णित चरित्रको किस रूपमें परिचालित और परणति किया है और वह परिचालन और परणति नाट्यवर्णित अवस्थाके अनुसार भली भाँति स्वाभाविक हुई है या नहीं। नाटकोंके चरित्र-चित्रणमे स्वाभाविकता और अस्वाभाविकता समझनेका यही एक मात्र उपाय है। नहीं तो, किसी निर्दिष्ट जाति और देशकालके लिए जो स्वाभाविक है उसका अन्य जाति और देशकालके लिए अस्वाभाविक बोध होना कुछ भी असभव नही है।... एक दृष्टान्तके द्वारा इस बातको समझिए। 'उस पार' द्विजेन्द्रलालका प्रथम और अन्तिम सामाजिक नाटक है। इस नाटकके प्रधान पात्र भोलानाथका चित्र बहुत ही असाधारण है; किन्तु तो भी उसे हम अस्वाभाविक नही कह सकते। जगतके सर्वश्रेष्ठ नाटककार शेक्सपियरके श्रेष्ठ नाटकोंके अधिकांश चरित्र भी तो प्रायः असाधारण हैं,—हेम्लेट, किंग लियर, लेडी मेकबेथ, मीरण्डा आदिमेंसे कोई भी चरित्र तो राह-घाट पर जहाँ [illegible]

देता यह बात उनके 'उस पार' नाटकके पढ़नेसे ही—यद्यपि उसमें थोड़ी बहुत त्रुटियाँ रह गई हैं—हमें विना किसी संकोचके कहना पड़ती है।

पिछले जीवनमें द्विजेन्द्रलालने अपने किसी भी सामाजिक, ऐतिहासिक और पौराणिक नाटकमें केवल आदर्श चरित्र चित्रित करनेका प्रयत्न नहीं किया। आदर्श-चरित्र-चित्रणके सम्बन्धमें नाटकलेखकोंके जो अनेक मत है इस लेखमें उन सबकी यथायोग्य आलोचना करनेके लिए स्थान नहीं है। आदर्श चरित्रका चित्रण करना सहज है, कोई कोई इसीलिए जिस नाटकमें आदर्शसृष्टिका प्रयास दिखलाई देता है उसकी अपेक्षा साधारण मानवचरित्र-विश्लिष्ट नाटकको ऊँचा स्थान देते हैं। आदर्श-अङ्कनकी पद्धति भी दो तरहकी है। कोई कोई सर्वांगसुन्दर आदर्शकी सृष्टि करते है और कोई कोई दोषगुणयुक्त मनुष्यचरित्रमें ही एक दो उच्च प्रवृत्तियोंका—वर्णनीय चरित्रके घात-प्रतिघातसंकुल जीवनको जटिल गतिमेंसे होकर—किस प्रकार विकाश हुआ, केवल यही दिखलाते है। इन जुदी जुदी चरित्रसृष्टियोंकी परस्पर तुलना नहीं की जा सकती। ये दोनोंही अपने अपने हिसाबसे श्रेष्ठ हैं।

किन्तु ये सब मरणशील मनुष्य सर्वांगसुन्दर आदर्श कभी नहीं हो सकते। सर्वांगसुन्दर आदर्श केवल एक श्रीभगवान हैं। ऐसी दशामें जब साधारण मनुष्यको सर्वांगसुन्दर आदर्शके रूपमें चित्रित करनेका प्रयत्न किया जाता है तब वह अस्वाभाविक हो जाता है। सर्वथा निर्दोष मनुष्यके अस्तित्वका समझना कल्पनासे भी असंभव है। साधारण दोषगुणोंके मिश्रणसे ही मनुष्य-चरित्र गठित है,—दो चार भूलें चूकें करता है इसी लिए तो मनुष्य मनुष्य है। हाँ यह अवश्य है कि कोई कोई व्यक्ति किसी किसी विषयमें आदर्श स्थानीय हो सकता है। जो इस प्रकारके स्वाभाविक रूपमे आदर्शको प्रस्फुटित कर सकते हैं, वे ही वास्तवमे ऊचे दर्जेके कवि है। द्विजेन्द्रलालमें यह शक्ति खूब थी। उन्होंने मेवाड़-पतनके महावतखाँके चरित्रमे आदर्श कर्तव्यपरायणता, प्रतापसिंहमे आदर्श स्वदेशभक्तिकी दृढ़ता, हेलेनके चरित्रमें आदर्श प्रेम और आत्मत्याग, चन्द्रकेतुमे आदर्श बन्धुप्रेम, कासिमखाँमें प्रभुभक्ति आदि मनुष्य-चरित्रके नाना प्रकारके महत्त्वपूर्ण आदर्श दिखलाये हैं।

केवल एक दुर्गादासके चरित्रको अवश्य ही उन्होने सर्वांगसुन्दर बनानेकी धुनमे कुछ अस्वाभाविक सा कर दिया है। इस चरित्रमें उन्होंने कोई भी स्खलना या त्रुटि नही दिखलाई। यदि एक ही दो जगह पदस्खलन दिखला दिया जाता ता यह चरित्र भी स्वाभाविक हो जाता।

श्रीदेवकुमार राय चौधरी।

निवेदन। 'शाहजहाँ' और 'उस पार' मे उक्त नाटकोंकी जो आलोचनायें प्रकाशित हुई हैं, उन्हे हमारे कई विद्वान् पाठकोंने बहुत ही पसन्द किया और हमसे कहा कि आगेके नाटकोंमें भी इस प्रकारकी आलोचनायें दी जॉय। तदनुसार इस ग्रन्थमें भी कुछ आलोचनायें प्रकाशित की जाती है। आशा है कि इससे इस नाटकका मर्म समझनेमें और द्विजेन्द्र बाबूके अन्यान्य नाटकोंके महत्त्वसे परिचित होनेमें बहुत सहायता मिलेगी। साथ ही हिन्दीमें भी इस प्रकारके साहित्य-परीक्षा-ज्ञानकी वृद्धि होगी।

समालोचनाका पहला लेख प्रवासीके अष्टम भागकी पंचम संख्यासे, दूसरा श्रीयुत बाबू नवकृष्ण घोष कृत 'द्विजेन्द्रलाल' से और तीसरा श्रीयुत देवकुमार राय चौधरी कृत विशाल ग्रंथ 'द्विजेन्द्रलाल' से अनुवाद करके प्रकाशित किया जाता है। इसके लिए हम उक्त तीनों लेखोंके विचारशील लेखकोंके प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हैं। विनीत—**नाथूराम प्रेमी।**

नाटकके पात्र।



पुरुष।

जहाँगीर	...	भारत-सम्राट्।
शेरखाँ	...	सम्राट्का उमराव।
महाबतखाँ	...	सम्राट्का सेनापति।
आयश	...	सम्राट्का खजांची, अन्तको मन्त्री
आसफ	...	आयशका पुत्र।
कर्णसिंह	...	मेवारका राणा।
खुसरू (रेवाका पुत्र)	...	जहाँगीरके बेटे।
परवेज	...	जहाँगीरके बेटे।
खुर्रम (शाहजहाँ)	...	जहाँगीरके बेटे।
शहयार	...	जहाँगीरके बेटे।
विजयसिंह	...	मेवारका सेनापति।

स्त्री।

रेवा	...	भारत-सम्राज्ञी।
मेहरुन्निसा (नूरजहाँ)	...	शेरखाँकी स्त्री।
लैला	...	नूरजहाँकी लड़की।
खादिजा (मुमताज)	...	आसफकी लड़की और शाहजहाँकी स्त्री।

नूरजहाँ।



पहला अंक।



पहला दृश्य।

[**स्थान**—बर्दवानमें दामोदर नदके किनारे शेरखॉके घरसे मिला हुआ बाग। बाग बड़े यत्नसे सुरक्षित है। केतकी, कदम्ब आदिके फूल चारों ओर खिले हुए है। सामने भादोंके महीनेका बढ़ा हुआ दामोदर प्रबल वेगसे बह रहा है। सूर्यदेव अभी अस्त नहीं हुए हैं। उनकी सुनहली किरणें आकर नदकी छाती पर और दोनों किनारों पर पड़ रही हैं।

शेरखॉ अपनी स्त्री नूरजहॉके साथ (तबतक नूरजहाँ नाम नहीं पड़ा था। उस समय नूरजहॉका नाम मेहरुन्निसा था) उसी नदके किनारे एक चबूतरे-पर बैठे हुए है। उनकी कन्या लैला और नूरजहॉके भाई आसफकी कन्या खादिजा एक गाना गा रही है। शेरखॉ अपनी स्त्रीके साथ एकाग्र मनसे वही गाना सुन रहे है।]

गीत।

धनाश्री।

सुन्दर सुरधाम-सदृश शोभा अधिकाई।
तुलना नहिं विश्वबाच तेरी लखि पाई॥ सु०॥
मोहत मन देश-रत्न, श्यामलता छाई।
अप्सरा विहार करैं मानौं इत आई॥ सुन्दर०॥
शीतल शात घने कुंज कुसुमित सुखदाई।
भाँति भाँति चहकि रहीं चिड़ियाँ मनभाई॥ सुन्दर०॥

झरनन झनकार उठी झर झर झरि लाई।
डोलत मृदु मलय-पवन त्रिविध अति सोहाई ॥ सु० ॥
उपवन वन बीच बसी सौरभ सरसाई।
गान-तान रूप-राशि चार ओर छाई ॥ सुन्दर० ॥
हा हा अमरावती अनाथ आज देखो !
पहो हतभागिनी अनन्द कौन लेखो ॥ सुन्दर० ॥
दुर्दशा भुलाय भले, बन्धन बिसराई।
हँसो हँसो हँसो, चहै होय जग-हँसाई ॥ सुन्दर० ॥

शेरखाँ——बहुत सुन्दर गीत है ! जाओ, अब तुम दोनों जाकर खेलो। (दोनों बालिकायें चली जाती है।)

नूरजहाँ——यह कैसा सुन्दर देश है ! इसके लंबे चौड़े खेत ——जिनके ऊपरसे श्यामलताकी लहर लहराती जाती है; इसके नद-नदी——जिनका अथाह जलराशि जैसे उनके भीतर समाता ही नहीं; इसके निकुंज वन——जिनमे छाया, सुगन्ध और संगीत जैसे परस्पर लिपटे हुए सो रहे हैं ! सारा देश जैसे एक अलौकिक स्वर्गीय सुखका स्वप्न देख रहा है।

शेर०——ईश्वरने यहाँ रहनेवालोको ऐसा देश दिया है, मगर उसकी रक्षा करनेकी शक्ति नहीं दी।

नूर०——ना प्रियतम, मुझे जान पड़ता है, इनके इतने सुखको दैव सह नहीं सका। शायद किसीके भी इतने सुखको दैव सह नहीं सकता।

शेर०——नहीं मेहर ! इस देशका यह उपजाऊ सौन्दर्य ही इसके लिए काल हो गया। इस बंग-भूमिने बहुत अधिक आदरसे ही अपनी सन्तानोका सर्वनाश कर डाला। आदर अच्छी चीज़ है। वह वर्षाकी जलधाराकी तरह पृथ्वीको हराभरा करता है। लेकिन बहुत

अधिक आदर बेहद वर्षाकी तरह अपने कामको आप ही नष्ट कर देता है ।

नूर०—तो तुम बहुत अधिक आदर करके मुझे भी नष्ट कर रहे हो ?

शेर०—तुम्हें मेहर ? मुझे जान पड़ता है, मै तुम्हारा यथेष्ट आदर कर ही नहीं पाता।

नूर०—देखो प्रियतम ! लैला और खादिजा इस नदके किनारे कैसे गलेमे हाथ डाले टहल रही है—जैसे दो परियोंकी लड़कियाँ हो !

शेर०—दोमे एक तो जरूर ही है ।

नूर०—उनके पास ही वे गुलाबके फूल खिल रहे है । इन लड़कियोके मुँह पर और उन गुलाबोके ऊपर अस्त होते हुए सूर्यकी सुनहली किरणें आकर पड़ रही है। कौन कह सकता है कि इन लड़कियोके चेहरे सुन्दर है या गुलाबके फूल ।

शेर०—सच है प्यारी !

नूर०—इनके पीछे बढ़ाहुआ दामोदर नद दोनों किनारोंसे उमड़ता हुआ प्रचण्ड अस्थिर वेगसे बहा जा रहा है ! कैसा सुंदर है !

शेर०—कैसे सुखी है हम लोग मेहर !

(नूरजहॉका हाथ हाथमे लेता है ।)

नूर०—(अविचलित अन्यमनस्क भावसे) लेकिन हमारा इतना सुख शायद दैव देख न सकेगा।

शेर०—क्यों न देख सकेगा मेहर ? हमने किसीका कुछ अपराध नहीं किया; किसीका कुछ लिया दिया नहीं; हम केवल एक दूसरेको प्यार करके सुखी है। इसी अपराधसे हमारे सुखको दैव देख न सकेगा ?

नूर०—इन बंगालियोंने स्वामी क्या अपराध किया था ? ये लोग अपने ही सुखमें मगन थे। किन्तु इनके सुखको दैव देख न सका। इतना सुख दैव देख ही नहीं सकता। दैव अगर कुछ नहीं करता तो और लोग नहीं देख सकते। ईर्षा होती है, लोभ होता है, छीन लेनेकी इच्छा होती है।

(इसी समय नूरजहाँके भाई आसफने पीछेसे आकर हँसते हुए कहा।)

आसफ—मगर मैं आप लोगोंका—

नूर०—(चौककर) कौन ? आसफ ?

शेर०—आसफ ही तो है !

(यों कहकर उठकर खड़े होकर आसफका हाथ पकड़ता है।)

आसफ—मै कह रहा था खाँ साहब कि मै आप लोगोका कुछ छीन लेने नहीं आया हूँ; बल्कि कुछ देने आया हूँ।

शेर०—क्या देने आये हो ?

आसफ—चटपट नहीं कह डालूँगा—पहले—

नूर०—पिताजी कुशलसे है ?

आसफ—हाँ मेहर। सम्राट् जहाँगीर—

शेर०—सम्राट् जहाँगीर कौन ?

आसफ—क्यो !—सलीम। वे अकबरके मरनेके बाद 'जहाँगीर' नामसे सम्राट् हुए है। यह क्या तुमने नहीं सुना ?

नूर०—सम्राट् अकबरका स्वर्गवास हो गया ?

आसफ—तुमने नहीं सुना ?—आश्चर्य है।

शेर०—हमे सुननेकी छुट्टी नहीं मिली। हम अपने ही सुखमें मग्न है।

आसफ—सचमुच नहीं सुना ?

शेर०—नहीं आसफ । उससे हमारा क्या आता-जाता है? अदरखके बैपारीको जहाजकी खबरसे क्या काम !

आसफ—उससे तुम्हारा बहुत कुछ आता-जाता है, यह मैं अभी दिखा दूँगा—

शेर०—अच्छा भीतर चलो । अँधेरा हो आया । चलो मेहर—

नूर०—चलो चलती हूँ ।

(आसफ और शेरखाँ घरके भीतर जाते हैं ।)

आसफ—(जाते जाते) खादिजा कहाँ है?

शेर०—वह देखते नहीं, लैलाके गलेमें हाथ डाले घूम रही है ।

आसफ—मैं देखता हूँ यहाँ सुखसे है ।

(दोनों जाते हैं ।)

नूर०—सलीम सम्राट् है ।—फिर वह बात क्यों मनमें आती है !—नहीं, उस खयालको मैं मनमें न आने दूँगी ।—ना ना ना ! वह शुरू जवानीका एक खयाल भर था । अब फिर वह चिन्ता क्यों है ! सलीम सम्राट् है, उससे मेरा क्या ? अदरखके बैपारीको जहाजकी खबरसे क्या काम !

(इसी समय शेरखाँ फिर प्रवेश करता है ।)

शेर०—मेहर—बहुत अच्छी खबर है ।

नूर०—क्या स्वामी ?

शेर०—सम्राट् जहाँगीरने मुझे पाँचहज़ारीका पद देकर आगरेमें बुला भेजा है ।

नूर०—सर्वनाश !

शेर०—यह क्या कहती हो !—यह तो मेरे लिए बड़े सम्मानकी बात है ।

नूर०—जाओगे ?

शेर०—जाऊँगा क्यों नहीं !

नूर०—मै कहती हूँ, मत जाना ।—खबरदार !

शेर०—इतनी उत्तेजित क्यों हो रही हो ? यह तो बड़े आनन्दकी बात है ।

नूर०—बात सुनो—कहती हूँ, मत जाओ—सावधान !

(इतना कहकर नूरजहाँ तेजीसे चली जाती है ।)

शेर०—आश्चर्य ! मेहर एकाएक इतना उत्तेजित क्यों हो उठी ! कभी कभी मेहर विचलित अवश्य हो उठती है; लेकिन इतना विचलित होते उसे मैंने कभी नहीं देखा ।

दूसरा दृश्य ।

स्थान—आगरेमे सम्राट् जहाँगीरके महलका अन्त.पुर ।

समय—तीसरा प्रहर ।

[सम्राट् जहाँगीर और सम्राज्ञी रेवा दोनो खड़े हुए बातचीत कर रहे है । रेवा श्वेत वस्त्र पहने है । उसने उसी समय स्नान किया है । उसके बाल खुले हुए है । हाथमें पूजाका पात्र है ।]

रेवा—सच कहो ।

जहाँ०—मै सच कहता हूँ रेवा, शेरखाँ मेरे होशियार खजांची आयशका दामाद है । और शेरखाँ खुद एक खास आदमी है । उसे उसके योग्य पद देनेके लिए मैने आगरेमे बुला भेजा था ।

रेवा—उसकी स्त्रीके ऊपर तुम्हारी तनिक भी दृष्टि नहीं है—तनिक भी आसक्ति नहीं है ?—तनिक भी ? सोचकर देखो ।

जहाँ०—मै अपने हृदयके भीतर जहाँतक देख पाता हूँ, मुझे वहाँ कुछ भी गूढ़ प्रयोजन नहीं देख पड़ता ।—तुम अपने मनमें खिन्न न होना रेवा ।

रेवा—देखो नाथ, मै जो यह बात पूछती हूँ सो इस कारणसे कि वह पराई स्त्री है। यदि उसके साथ ब्याह करना तुम्हारे लिए संभव होता तो मै कुछ भी न कहती। किन्तु यह है एक आदमीके घरको बिगाड़नेका विषय—एक परिवारके सुख और शान्तिको नष्ट करनेकी बात। महापाप है! इसीसे मै चिन्तित हो रही हूँ। अपने लिए नहीं है नाथ; मुझे चिन्ता आपहीके लिए है।

जहाँ०—रेवा, मेरे लिए तुम जैसे सदा चिन्तित रहती हो वैसे ही आग्रहके साथ अगर मुझे भी प्यार कर सकतीं।

रेवा—स्वामी!—अब भी आप वही बात कह रहे है?

जहाँ०—क्यो न कहूँ रेवा! जैसे मै तुम्हारे प्रेमका भिक्षुक पहले था वैसे ही आज भी हूँ। जीवनके उस रहस्यमय प्रभातमें मैंने तुम्हारे हृदयतीर्थके लिए यात्रा की थी—पास पहुँच भी गया था। किन्तु मैंने उसके भीतर प्रवेश करनेका अधिकार नहीं पाया।

रेवा—प्रभो, कितनी ही बार कह चुकी हूँ, फिर कहना होगा। हमारा यह विवाह क्या विवाह है? या राजनैतिक बन्धन मात्र है? यह हिन्दू और मुसलमानोको मिलानेके लिए आपके पिताके एक जातीय उद्देश्यके सिद्ध करनेका उपाय मात्र है। इसमे सन्देह नहीं कि वह उद्देश्य महत् और उदार है! उसके लिए हम दोनों ही अपने सुखको विसर्जन करने बैठे है।—राजाका कर्त्तव्य बड़ा ही कठोर होता है। उस कर्त्तव्यका पालन अगर न कर सकोगे नाथ, तो यह साम्राज्य एक मेघके महलकी तरह आकाशमे लीन हो जायगा! नहीं प्रभो, हमारा यह जन्म दुःखमय है! मगर उस दुःखको हम दूसरोंके लिए स्वीकार कर रहे हैं, यही हमारे लिए सुख है!

जहाँ०—सबका साध्य बराबर नहीं होता रेवा।—खैर ये सब पुरानी बातें जाने दो। कौन जाने, आज फिर ये सब बातें याद क्यों आ-गई!—वह देखो, शाहजादा खुसरू आ रहा है। देखो रेवा, खुसरू-को मैं सावधान किये देता हूँ। तुम भी सावधान कर देना।

(सम्राट्का बड़ा लड़का खुसरू प्रवेश करके प्रणाम करता है।)

जहाँ०—खुसरू! सुनो, मैंने तुमको क्यों बुला भेजा है? मैंने तुम्हारे विरुद्ध एक बहुत ही बुरी बात सुनी है।

खुसरू—क्या बात पिताजी?

जहाँ०—मैंने सुना है कि तुम मेरे विरुद्ध कुछ विद्रोहकी सलाह कर रहे हो। यह बात क्या सच है?

खुसरू—नहीं पिताजी।

जहाँ०—सच हो या झूठ, तुमसे एक बात कहे रखता हूँ खुसरू। देखो तुम मेरे बड़े लड़के हो। तुम भारतके होनेवाले सम्राट् हो। अपने दोषसे सब न गवाँ देना।

खुसरू—नहीं पिताजी।

जहाँ०—तुम अगर मेरे विरुद्ध कुछ करोगे तो यद्यपि तुम मेरे बड़े लड़के हो, यद्यपि तुम अपनी माकी आँखोंकी पुतली हो, यद्यपि तुमको सब लोग प्यार करते है, तो भी अगर तुम अन्याय पर उतारू होगे, तो तुम्हारी प्रार्थना, तुम्हारी माँके आँसू और मेरा स्नेह, ये सब तुमको उचित दण्डसे न बचा सकेंगे। याद रक्खो। (प्रस्थान।)

रेवा—(खुसरूके कन्धे पर हाथ रखकर स्नेहके साथ कोमल स्वरसे) खुसरू!

खुसरू—अम्मी!

रेवा—यह बात सच है?—चुप क्यों हो?—यह बात सच है?

खुसरू—नहीं अम्मी, झूठ है।

रेवा—नहीं खुसरू, यह बात सच है। मैं तुम्हारी नीची निगाह, भर्राई हुई आवाज और अस्थिर भावसे समझती हूँ कि यह बात सच है। मुझसे क्यों झूठ बोलते हो खुसरू! मै तुम्हारी मा हूँ। मुझसे भी झूठ! मैं पूछती हूँ। कहो। यह बात सच है?

खुसरू—(कुछ देर चुप रह कर सिर झुकाये हुए) हाँ अम्मी, यह सच है।

रेवा—सो तो मैं पहले ही समझ गई थी। कभी यह काम न करना। बोलो; चुप क्यों हो? बोलो, नहीं करोगे?

खुसरू—नहीं अम्मी, मै यह नहीं कह सकूँगा। मैं उन लोगोंके निकट अंगीकार कर चुका हूँ।

रेवा—तुम्हारा अंगीकार करना अन्याय है! उस अंगीकारको—उस प्रतिज्ञाको तोड़ना ही धर्म है। कहो कसम खाओ—

खुसरू—अम्मी—(सिर झुका लेता है।)

रेवा—देखो खुसरू, मै तुम्हारी मा हूँ। मासे बढ़कर भलाई सोचनेवाला संसारमे और कोई नहीं है। उसका शरीर, स्नेह, मन, उसकी सारी प्रवृत्तियाँ, उसका सारा जीवन सन्तानके लालन-पालन और भलाईके लिए ही विधाताने बनाया है। मै दिनरात तुम्हारे मंगलकी कामना किया करती हूँ। उसके बदलेमे तुमसे कुछ नहीं माँगती। बदलेमें भी केवल तुम्हारा कल्याण चाहती हूँ। मै तुम्हारे ही भलेके लिए कहती हूँ कि यह काम कभी न करना। कहो, नहीं करोगे।

खुसरू—नहीं करूँगा।

रेवा—मेरे पैर छूकर कसम खाओ।

खुसरू—(वैसा ही करके) कसम खाता हूँ, विद्रोह नहीं करूँगा।

रेवा—अच्छा अब जाओ बेटा।

(खुसरूका प्रस्थान।)

रेवा—माताको इतना सुख ! भगवान्, सन्तानके भलेकी कामना करके ही माताको इतना सुख होता है।

तीसरा दृश्य।

स्थान—मैदान।

समय—जाड़ेकी ऋतुका प्रात काल।

[पुरवासी लोग सबेरे धूपमे बैठे हुए बातें कर रहे है।]

१ पुरवासी०—तुमने शेरखाँको देखा है ?

२ पुर०—मैं पहलेसे उन्हे जानता हूँ। इधर आगरेमे जबसे फिर आये है तबसे भी दो-तीन बार उन्हे देखा है।

३ पुर०—(गर्वके साथ) मेरी उनके साथ बहुत दिनोकी जान-पहचान है।

१ पुर०—आगरेमें वे कब आये ?

२ पुर०—यही कोई एक महीनेके लगभग हुआ।

१ पुर०—देखनेमे वे कैसे है ?

२ पुर०—देखनेमें वे एक छोटे मोटे पहाड़की तरह है।

३ पुर०—बापरे ! कैसा डीलडौल है ! छाता जैसे एक मैदान है !

१ पुर०—नहीं तो खाली हाथ बाघके साथ कैसे लड़ते ?

२ पुर०—हथियार लेकर ही कितने आदमी लड़ सकते है ?

४ पुर०—लेकिन मुझे जान पड़ता है, यह बात सच नहीं है।

२ पुर०—यह क्या कहता है !

३ पुर०—कहता है, बाघके साथ लड़नेकी बात सच नहीं है।

१ पुर०—सच नहीं है?—क्यों?

३ पुर०—हाँ कहो तो भैया ! क्यों?—सच क्यों नहीं है ?

४ पुर०—क्यों? अच्छा सुनो।—शेरखाँ—हाँ—देखनेसे—उसके बदनमें ताकतका होना जरूर जान पड़ता है—

२ पुर०—जान पड़ता है?

४ पुर०—अच्छा 'है' सही। 'जान पड़ता' निकाल ही डालो। लेकिन खाली हाथ अगर वह बाघसे लड़ा तो शेरखाँ नहीं लड़ा, खुद रावण आकर लड़ा होगा। और या वह बाघ न होगा, कोई बनबिलाव होगा।

१ पुर०—साथमे जो लोग गये थे उन सबका कहना है कि शेरखाँ बाघके साथ लड़े थे।

४ पुर०—हूँ—यों ही लोग कहा करते है। सुनी बात पर विश्वास न करना चाहिए। अपनी आँखसे देखा है? मै कहता हूँ, नहीं लड़ा।

३ पुर०—हूँः—तुम्हारे यो कहनेसे ही हो गया कि शेरखाँ बाघसे नहीं लड़े।

४ पुर०—मै कहता हूँ, नही लड़े। लड़ना साबित करो।

२ पुर०—यह आदमी तो बड़ा झगड़ालू जान पड़ता है।

४ पुर०—प्रमाण क्या है? सुनी बातका कुछ प्रमाण नही।

(पॉचवें व्यक्तिने—जो जरा दूर पर बैठा हुआ घमा रहा था और सब बात चुपचाप सुन रहा था—आगे बढ़कर कहा—ठीक है ! सुनी बात कोई बात नहीं है ! अच्छा आओ तो, जरा मै जिरह करूँ।)

४ पुर०—अच्छा जिरह करो।

(इतना कहकर गर्वका भाव दिखाता हुआ उसके पास खड़ा होता है।)

५ पुर०—तुम्हारा नाम क्या ?

४ पुर०—कादिरबेग।

५ पुर०—तुमने कैसे जाना ?

४ पुर०—मेरे बापने यह नाम रक्खा था।

५ पुर०—रखते देखा है ? याद है ?

४ पुर०—नहीं। लोग मुझे इसी नामसे पुकारते हैं।

५ पुर०—तो यह सुनी बात है ?—तुम्हारा नाम, मैं कहता हूँ, कादिरबेग नहीं है।

१ पुर०—क्यों !

३ पुर०—अबकी सयाने सयानेका सामना है। आओ तो भैया। हमें मूर्ख समझकर विद्या जाहिर कर रहे थे।—अब !

२ पुर०—करो करो—जिरह करो।

५ पुर०— अच्छा, तुम्हारे बापका नाम क्या है ?

४ पुर०—जालिमबेग।

५ पुर०—यह भी सुनी बात है ?

४ पुर०—कैसे ?

४ पुर०—तुम्हारे बाप जालिमबेग थे, यह तुमने जाना कैसे ?—सुनी बात है। क्यो ! सुनी बात है या नहीं ?

४ पुर०—हाँ—इसे एक तरह सुनी बात ही कहना चाहिए।

५ पुर०—बस, तुम्हारे बाप जालिमबेग नहीं है।

(पहला, दूसरा और तीसरा, तीनों पुरवासी उत्साहसे " शाबास, शाबास " कहकर उछल पड़े।)

१ पुर०—करो, जिरह करो—करो बेटासे जिरह।

४ पुर०—अच्छा, अगर मेरा बाप जालिमबेग नहीं तो और कौन है ?

५ पुर०—सो मैं क्या जानूँ । तुम्हारा बाप रघुनाथ तिवारी या रामसिंह कोई होगा।

४ पुर०—(क्रोधके स्वरमें) क्या! मै हूँ कादिरबेग, और मेरा बाप है रघुनाथ तिवारी या रामसिंह ?

५ पुर०—तुम्हीं कादिरबेग नहीं हो।

४ पुर०—मै कादिरबेग नहीं हूँ—तो मै कौन हूँ ?

५ पुर०—तुम भी शिवनाथ हो।

४ पुर०—हूँ ! मै शिवनाथ हूँ !—देखो, मै कैसा शिवनाथ हूँ। (यह कहकर वह पाँचवें पुरवासीको पकड़कर मारने लगता है ।)

५ पुर०—अरे छोड़ो छोड़ो । ओः बापरे ! छोड़ो—देखो तुम लोग—

४ पुर०—क्यो मै कादिरबेग नहीं हूँ ?

५ पुर०—हाँ हाँ तुम कादिरबेग हो, तुम्हारे बाप कादिरबेग है, तुम्हारी चौदह पीढी कादिरबेग है ।

४ पुर०—और मेरे बाप ?

५ पुर०—कह तो चुका कि कादिरबेग ।

४ पुर०—मै भी कादिरबेग और मेरे बाप भी कादिरबेग ? यह भी कहीं हो सकता है ? नही, मेरे बाप जालिमबेग है ।

५ पुर०—अच्छा !—तुम्हारे बाप जालिमबेग है, इससे ही अगर तुम खुश हो तो मै माने लेता हूँ कि तुम्हारे बाप जालिमबेग हैं ।

४ पुर०—(उसे छोड़कर) तू मेरे बापदादेमे गड़बड़ डालनेवाला था ! पाजी !

५ पुर०—अब मै हार गया ।

१ पुर०—कैसे हार गये !—मार खाकर—

३ पुर०—हार कैसे गये ?

२ पुर०—तर्कमे तुम जीते हो ।

५ पुर०—ना भैया, मै बराबर देखता आता हूँ कि जिसमें ताकत ज्यादह है वही सदा तर्कमे भी जीतता है ।—वह देखो बंदरोका राजा आरहा है । भागो सब लोग ।

१ पुर०—बंदरोका राजा कौन ?

४ पुर०—भागें क्यों ?

२ पुर०—वही है क्या ?—वह तो बंदर भी नहीं है—राजा भी नहीं है ।—वह तो मनुष्य है ।

३ पुर०—देखनेमें कुछ बंदरोसे मिलता जुलता जरूर है ।

५ पुर०—लेकिन मनुष्योंको खाता है—

१ पुर०—तुम क्या कह रहे हो ! सच ?

५ पुर०—किष्किन्धासे आया है ।

४ पुर०—सच ?

५ पुर०—कुंभकर्णका नाती है ।

२ पुर०—अरे बापरे !

५ पुर०—दाढी मूछ नही देखते ?

३ पुर०—ठीक तो है ।

५ पुर०—भागो भागो ।

(और सब "भागो भागो" कहते हुए भाग गये ।)

[दूसरी ओरसे बंदरराजका प्रवेश ।]

बंदरराज—करामत !

५ पुर०—यहाँ मुझसे ठहरनेके लिए महाराजने कहा था, इसीसे—

राजा—अच्छा किया ।—तुझसे जो मैने कहा था सो याद है ?

करामत—जी हाँ । ऐसी बातोमें शायद ही मुझसे कभी भूल हुई होगी ।

राजा—तो फिर कल ही । शेरखाँ जब सबेरे पालकी पर चढ़कर शाही दरबारमे जायगा—समझ गया ?

करामत—जी हाँ ।

राजा—मैंने अपने महावतसे कह रक्खा है । लेकिन वह शेरखाँको पहचानता नहीं । बाघसे लड़नेके बाद पाँच-छः दिनसे शेरखाँ खाट पर पड़ गया था । बाहर नहीं निकला । कल बादशाहने उसे बुला भेजा था । वह ज़रूर दरबारमें जायगा । वही ठीक समय है । उसके शरीरमे अभीतक बाघकी चोटके घाव बने हुए है–अच्छे नहीं हुए । —समझ गया ?

करामत—जी हाँ ।

राजा—तू शेरखाँको पहचानता तो अच्छी तरह है ?

करामत—जी हाँ । शेरखाँको देखते मेरी दाढ़ी पक गई ।

राजा—बस, तूही उस हाथीके ऊपर रहना । महावतको पहचनवा देना ।—समझ गया ?

करामत—हाँ राजा साहब—

राजा—और देख यह बात किसी पर प्रकट न होने पावे ।

(करामतने इशारेसे यह प्रकट किया कि उसके द्वारा यह बात किसी पर प्रकट न होगी ।)

राजा—बहुत इनाम मिलेगा । जा ।

(करामतका प्रस्थान ।)

राजा—सम्राट् कैसे खुश होगे, जब जानेंगे कि मैंने खुद शेरखाँको उनकी राहसे दूर हटा दिया है । उस दिन रातको बादशाहने मेरे साम-

ने जब कहा कि " शेरखाँ शेरसे लड़कर जीता है, उससे मैं जरूर खुश हुआ। लेकिन अगर शेर जीतता तो मै और भी खुश होता"—तब उसका अर्थ मै बहुत अच्छी तरह समझ गया!—बादशाह मेरे ऊपर कैसे खुश होंगे! ओः!—कैसे खुश होंगे!

चौथा दृश्य।

स्थान—आगरेमे शेरखाँका घर।

समय—रात।

(दोमंजिले पर नूरजहाँ और उसकी एक सखी।)

नूर०—उस दिन सम्राट् भीड़ भाड़के साथ सड़क पर शिकारसे लौटे आरहे थे। भीड़मेंसे कोई कोई 'शाबास शेरखाँ' कहकर चिल्ला रहा था। मै भी कौतूहलके कारण देखनेके लिए खिड़कीके पास चली गई।

सखी—फिर?

नूर०—जाकर देखा, बड़ी भीड़भाड़ है। सम्राट् घोड़े पर चढ़े उस भीड़के बीचमें है। उन्होने एकाएक ऊपरकी ओर ऑख उठाकर देखा। मेरी और उनकी चार ऑखे हुई। मुझे जान पड़ा, सम्राटका मुख उज्ज्वल हो उठा। मेरी नसनसमे गर्म खून चक्कर मारने लगा। मैं क्रोध, क्षोभ और लज्जाके मारे हट गई। उसके बाद ही मेरे स्वामी घर आये। उनके शरीरमें बहुतसे घाव थे। मुझे देखकर उन्होने पूछा—क्या हुआ मेहर? मुझे उनका वह पूछना झिड़कीसे भी कड़ा मालूम पड़ा।

सखी—तुम जब सम्राट्को पहलेहीसे चाहती थीं तो शेरखाँसे ब्याह करना ही तुम्हारा अन्याय था।

नूर०—नहीं, मैंने सम्राट्को कभी चाहकी निगाहसे नहीं देखा।—अपनी वह कहानी मैंने तुमसे कभी नहीं कही। किसीसे भी नहीं कही। आज तुमसे कहती हूँ, सुनो। कहनेका कारण यह है कि मैं तुमसे उपदेश चाहती हूँ।

सखी—कहो।

नूर०—(कुछ सोचकर) ना। अच्छा कही डालूँ—सुनो। उस समय मेरा भी ब्याह नहीं हुआ था। लेकिन शेरखाँसे ब्याह होनेकी बात पक्की हो गई थी। उस समय भारतके सम्राट् अकबरशाह थे। एक दिन सम्राट्के परिवारमें रातका भोजन था। भोजनके बाद जब सब मेहमान खाकर उठकर चले गये—अन्तःपुरमें सम्राट्के परिवारके लोग ही रह गये—तब हम कई औरतें बुर्का डालकर उन लोगोंके सामने नाचने लगीं।

सखी—क्यों?

नूर०—तुम नहीं जानतीं। यह एक चाल है। जो लोग सम्राट्के बड़े ही प्रियपात्र हैं उनकी स्त्रियाँ बुर्का डालकर कभी कभी इस तरह बादशाहके यहाँ नाचती है।

सखी—सच!

नूर०—मेरे पिता सम्राट्के अत्यन्त प्रियपात्र होनेके कारण उस परिवारके आत्मीयोंमें ही गिने जाते थे। उन्होंने इस तरह रातके नाचमें मेरे जाने पर आपत्ति की थी। मेरे बहुत अनुनय विनय करने पर और मेरे भाई आसफके यह कहने पर कि मुँह बंद करके नाच होगा, कोई पहचान न सकेगा, मेरे पिताने मेरा जाना मँजूर कर लिया।

सखी—(आग्रहके साथ) फिर क्या हुआ?

नूर०—रातको हम लोगोने नाचना शुरू किया। शाहजादा सलीम वहाँ पर उपस्थित थे। बाजेके ऊपर हम लोगोंका नाच, तरंगोके ऊपर नावकी तरह, हरएक ताल पर थिरकने लगा। फिर मैने गाना शुरू कर दिया। बुर्केके भीतरसे मैने देखा कि शाहजादा मेरे नाच और गाने पर मुग्ध होकर मेरी ओर टकटकी बाँधे हुए है। बुर्का मानो आप ही खुल गया। हम लोगोंकी चार आँखे हुई। मैने बहुत ही व्याकुल भावसे बुर्का डाल लिया। सलीम पागलकी तरह मेरी ओर दौड़ पड़े। परिवारके और लोगोने उन्हे पकड़कर उनकी जगह पर बिठा दिया। सभा टूट गई। मै मानो एक तरहके विजय-गर्वके साथ घर लौट आई।

सखी—अब सब मेरी समझमे आ रहा है।

नूर०—दो दिनके बाद एक दिन, जब मेरे पिता और भाई आसफ घरमें नहीं थे, सलीम एकदम मेरे पास आकर उपस्थित हो गये। उन-

करके अकबरने शेरखाँको बर्दवानमे वहाँका शासक बनाकर भेज दिया।

सखी—तबसे तुम्हारी और सलीमकी मुलाकात नहीं हुई?

नूर०—नहीं। तबसे आगरेमे लौटकर आने पर यही मुलाकात हुई है।

सखी—तो उन पर अब भी तुम्हे अनुराग है?

नूर०—नहीं। इसे अनुराग या आसक्ति नहीं कह सकते।—यह एक उद्दाम प्रवृत्ति है। यह या तो उच्च आशा है—या अहंकार है। लेकिन अनुराग या आसक्ति नहीं है।

सखी—मै कहती हूँ, तुम बर्दवानको लौट जाओ। नहीं तो आगे चलकर तुम्हें शान्ति नहीं मिलेगी। दूर चलेजाने पर फिर पुरानेमें मन लग जायगा।

नूर०—(अर्द्ध स्वगत) फिर शेरखाँके सदृश स्वामी किसका है? पराक्रममें, उदारतामे, पवित्र चरित्रमें उनके समान संसारमे कितने आदमी हैं?—लो वे मेरे पिता और स्वामी आ रहे है।

सखी—तो मै अब जाती हूँ बहन।

नूर०—अच्छा बहन। देखो, ये सब बातें किसी पर प्रकट न हों। तुम्हे बहुत ही अपना समझकर मैने सब कचा हाल कह दिया है। किसीसे कहना मत।

सखी—नही।—तुम बर्दवानको लौट जाओ।

नूर०—चलो तुम्हे नीचेतक पहुँचा आऊँ। (दोनों जाती हैं।)

[बातें करते हुए शेरखाँ और आयश प्रवेश करते है।]

आयश—तुम्हे खाली हाथ शेरसे लड़ानेमे मुझे कुछ सन्देह हुआ था। लेकिन आज फिर तुम्हे हाथीके पैरके नीचे कुचलवानेकी यह चेष्टा देखकर मुझे निश्चय हो गया है कि सम्राट् तुम्हे मरवा डालना चाहते है। मगर उनको अपने न्याय-विचारके सम्बन्धमे कुछ अभिमान है, इसीसे वे प्रकट रूपसे तुम्हारे प्राण नहीं ले सकते। यही कारण है कि वे गुप्तरूपसे चालाकीके साथ तुम्हें मरवा डालना चाहते हैं। तुमने अपने बलसे आज मस्त हाथीको मार डाला; और कोई होता तो उसकी जान जरूर जाती।

शेर०—लेकिन मेरी समझमें नहीं आता कि मेरी जान लेकर सम्राट्को क्या लाभ होगा।

आयशा—सरल, उदार शेरखाँ—इसी कारण मैं तुम्हें इतना प्यार करता हूँ! यह बात मैंने तुमसे अबतक नहीं कही थी। संकोच मालूम पड़ता था। लेकिन जब जीवन-मरणकी समस्या आ पड़ी है तब कहे बिना काम नहीं चल सकता—सुनो। तुम्हारी मृत्युसे सम्राट्को लाभ होगा—मेरी लड़की और तुम्हारी स्त्री मेहरुन्निसाका।

शेर०—क्या!—सम्राट् तो क्या—

(इतना कहकर शेरखाँने सहसा अपनी तरवारके कब्जेपर हाथ डाला।)

आयशा—इस तरह क्रोधमे आजाना ठीक नहीं। स्थिर होकर सुनो। मेहरुन्निसाका जब तुम्हारे साथ ब्याह नहीं हुआ था, तबकी बात तुमको याद है?

शेर०—याद है। लेकिन मै कभी कल्पना भी नहीं कर सका कि मनुष्य इतना नीच हो सकता है—वह ब्याही हुई पराई स्त्रीको—

आयशा—मै जो कहता हूँ सो सुनो शेरखाँ! तुम बंगालको लौट जाओ। सम्राट् पराक्रमी और सब तरह तुमसे शक्तिशाली है। तुम यहाँ रहोगे तो तुम्हारी जान जायगी।

शेर०—लौट जाऊँ?

आयशा—हाँ। और जो दो चार दिन यहाँ रहो तो खूब सावधान रहो। घरसे बाहर मत निकलो। तुम्हारे शरीरमे इस समय भी शेरके पंजेके घाव है। यह कह देनेसे बादशाहको कुछ भी सन्देह न होगा कि तुम खाट पर पड़े हुए हो। बाहर न निकलना। और सोनेके कमरेके दरवाजे बंद करके सोना।—रात हो गई है, मै जाता हूँ।

(धीरे धीरे प्रस्थान।)

शेर०—वह इस समय दूसरेकी स्त्री है, तिसपर भी सम्राट्—ओः, सोचमें डाल दिया! भारी सोचमे डाल दिया!

[नूरजहाँका फिर प्रवेश ।]

शेर०—यह लो मेहर आगई ।—कहाँ थीं ?

नूर०—मुईनुद्दीनकी बीबी आई थी । उसे भेजने नीचे गई थी । अब्बा आये थे ?

शेर०—हाँ (कोमल स्वरसे)—मेहर ! चलो, हम लोग बर्दवान चलें ।

नूर०—(सहसा) हाँ अच्छी बात है। चलो चलें। कल ही चलो !

शेर०—तो इतना उत्तेजित क्यों होती हो मेहर ? क्या हुआ !

नूर०—कुछ नहीं —यहाँ घड़ीभर भी ठहरनेको मेरा जी नहीं चाहता । और कुछ नहीं (दृढ़तासूचक स्वरमें) मै यहाँ रहना नहीं चाहती।

शेर०—अच्छी बात है । यही होगा। शीघ्र ही बर्दवानको लौट चलूँगा । चलो, नीचे चलो । खाना तैयार होगा । चलो ।

पाँचवाँ दृश्य ।

स्थान—आगरेमें सम्राट्का महल ।

समय—तीसरा पहर ।

[जहाँगीर अकेले टहल रहे हैं ।]

जहाँ०—नहीं । अब मै अपनी इच्छाको दबाकर नहीं रख सकता। उस दिनसे एक तरहका उन्माद सा मेरे हृदयपर अधिकार कर बैठा है। मैं किसी तरह उसकी यादको अपने जीसे हटा नहीं सकता ! उस दिन खिड़कीमें देखा— कैसा वह रूप था !—मानों बर्फके ऊपर उषाका उदय हो; मानों सन्नाटेकी आधी रातमें ईमनकी पहली तान हो; मानों मनुष्यकी शुरू जवानीमें प्रेमका प्रभात हो !—वह एक निःसंग सुखकी तरह नहीं है, मधुर रागिनीकी तरह नहीं है, खिले हुए फूलकी तरह नहीं है।

वह मानों एक आनन्दका बाग है, सौन्दर्यकी लहरोंका कल्लोल है, महिमाका समारोह है !—वह मानों भारतका नहीं है, ईरानका नहीं है, अरबका नहीं है; भूत, भविष्य या वर्तमानका नहीं है; स्वर्गका नहीं है, मनुष्यलोकका नहीं है ! वह मानो सब देशोंका है; सब समयोंका है। स्वर्ग और मनुष्यलोक, दोनोंके देखनेके लिए, दोनोके बीचमें रक्खी हुई एक जुदी ही सृष्टि है !—वह मानों देवताकी प्रेरणा, कविका सफल स्वप्न, ब्रह्माण्डका विस्मय है !—कैसी वह मूर्ति है !

(इसी समय बन्दरराज आकर सम्राट्को बंदगी करता है।)

जहाँ०—आगये राजासाहब ! मै इस समय आग्रहके साथ आपकी राह देख रहा था।

राजा—खुदावन्द !

जहाँ०—जान पड़ता है, आपने अनुमान कर लिया होगा कि मैंने आपको क्यों बुला भेजा है।

राजा—खुदावन्द !

जहाँ०—शेरखाँ यहाँसे बंगाल चला गया है। जरूर इसी कारणसे गया है। और कोई कारण होता तो इसमें सन्देह नहीं कि वह मुझसे कहकर जाता।

राजा—खुदावन्द !

जहाँ०—तो अब छिपानेकी जरूरत नहीं है। मै प्रकट रूपसे शेरखाँकी विधवाको चाहता हूँ। (पृथ्वी पर पैर पटककर) समझ गये ! (राजाने काँपते हुए अस्फुट स्वरसे सम्राट्के साथ-ही-साथ कहा-) खुदावन्द !

जहाँ०—डरिए नहीं। मैं बहुत ही उत्तेजित हो उठा हूँ। मेरा क्रोध आपके ऊपर नहीं—इस शेरखाँके ऊपर है। आप मेरी इच्छा प्रकट होनेके पहले ही समझ गये थे। आप पर मैं प्रसन्न हूँ। अगर आप अपने

काममें सफलता प्राप्त करेंगे तो मैं आपको इतना और ऐसा इनाम दूँगा जिसकी आपने आशा भी न की होगी—मैं उसे चाहता हूँ ।

राजा—जो हुक्म खुदावन्द !

जहाँ०—बंगालके सूबेदारसे मैंने कहला भेजा था; मगर मैं देखता हूँ, वह कायर है और इस मामलेमें ध्यान नहीं देता । आपको वहाँ जाकर उसे इस कामके लिए उत्तेजित और उत्साहित करना होगा । समझ गये ?

राजा—खुदावन्द !

जहाँ०—कल ही जाइए—तड़के । समझे ? देर न हो । जहाँतक जल्दी हो सके, यह काम कर डालो । मै उसे चाहता हूँ—समझ गये ?

राजा—खुदावन्द !

जहाँ०—तो अब आप जा सकते है—बहुत बड़ा इनाम मिलेगा ।—समझ गये ?

राजा—खुदावन्द !

जहाँ०—जाइए ।

(राजाका प्रस्थान ।)

जहाँ०—मै जानता हूँ, यह घोर अन्याय है—भयानक अविचार है । तो भी शेरखाँको मरना होगा । मैने उससे कहा था कि तू अपनी स्त्रीको छोड़ कर मुझे सौंप दे । उसने उसका उत्तर वीरोंकी ही तरह दिया था । तो भी उसी स्त्रीके लिए उसे मरना होगा । जब विकार होता है तब अत्यंत स्वादिष्ट हितकर वस्तु भी वमनमें निकल जाती है । न्याय-अन्यायका विचार बहुत दूर चला गया । हित-अहितके विचारकी शक्ति अब मुझमें नहीं रही । उसे मरना ही होगा ।

छठा दृश्य।

स्थान--पाण्डुआमें शेरखाँका घर।

समय—रात।

[लैला गा रही है। शेरखाँ और नूरजहाँ बैठे दोनों सुन रहे हैं।]

गीत।

ठुमरी। पंजाबी ठेका।

क्यों बरसत है सघन श्याम घन वर्षामहँ जल-धारा,
जो न जगावे भूमण्डल पर हास्य-हर्ष सुख प्यारा॥ क्यों०॥
तदपि हँसे जो भूमि, हँसीका तो वह ढंग निराला।
ऊपर हँसी, हृदयके भीतर जलती दारुण ज्वाला॥ क्यों०॥

नूर०—यह गीत तुमने किससे सीखा है लैला?

लैला—मौसीसे।

नूर०—उसने तुमको यह गाना सिखाया है? उसकी यह दुष्टता है।

शेर०—क्या हुआ मेहर? इसमें अन्याय क्या हुआ?

नूर०—सो तुम क्या समझोगे?—खबरदार, अब यह गान कभी मेरे आगे न गाना। समझी लैला?

लैला०—समझ गई अम्मी।

नूर०—जाओ सोओ जाकर; जाओ, मै भी आती हूँ।

(लैला चली गई। नूरजहाँ कुछ देर तक खिड़कीसे बाहर झाँकती रही।)

शेरखाँ—(धीरेसे) मेहर!

नूर०—नाथ! मैं कुछ रूखी पड़ गई थी, क्षमा करो।

शेर०—कुछ नहीं मेहर। तुम्हारा कुछ अपराध नहीं है। समझ गया, तुम किसी कारणसे खीझी हुई थीं। अपने आपेसे बाहर थीं।

(नूरजहाँ चुप रहती है।)

शेर०—(उठकर नूरजहाँके पास जाकर, उसका हाथ पकड़कर स्नेहके स्वरमें) मेहर, कुछ न कुछ हुआ अवश्य है। कोई चिन्ता कीड़ेकी तरह तुम्हारे हृदयके भीतर घुस अवश्य गई है। वह कौन चिन्ता है प्यारी ! मुझसे कहो। मैं तुम्हारा स्वामी हूँ। मुझसे नहीं कहोगी?

नूर०—नाथ ! मुझे कुछ भी नहीं कहना है।—सोओ नाथ। बहुत रात बीत गई है। मैं जाती हूँ—लैला अकेली है।

(सिर झुकाये हुए धीरे धीरे नूरजहाँका प्रस्थान।)

शेर०—आगरेसे पाण्डुयामे जबसे आया हूँ तबसे मेहर और भी अस्थिर हो उठी है। बात करते करते एकाएक विचलित हो उठती है, और फिर नर्म पड़कर अनुनय करती है। मेरी मेहरको क्या हो गया है?—पूछनेसे कुछ उत्तर नहीं देती। मेरी सुखमय गृहस्थीमें यह क्या गड़बड़ हो गया।—वह काहेका शब्द है?—नहीं, हवाका खटका है। पाण्डुयामे आकर सुख भले ही न हो, कुछ दिनोंके लिए बेखटके तो हो गया हूँ।—रात बहुत बीत गई है। नींद आ रही है।

(शेरखा लेट जाता है। बहुत जल्द नींद आ जाती है। दमभर बाद कई आदमी सावधानीके साथ धीरे धीरे प्रवेश करते है।)

१ आदमी—(धीमे स्वरमें) सो रहा है।

२ आ०—(वैसे ही स्वरमें) मारो।

३ आ०—(वैसे ही स्वरमे) सब लोग एकसाथ तरवारें खींच लो।

४ आ०—(वैसे ही स्वरमें) [illegible] खोली न जाय।

५ आ०—(वैसे ही स्वरमें) तैयार हो[illegible] फिर [illegible]ब देर काहेकी है? मारो।

(सब शेरखाँको मारनेके लिए [illegible]ते हैं।)

सरदार—(आगे आकर) नहीं। हम इतने आदमी मिलकर एक आदमीको मारेंगे—और सो भी जब वह पड़ा बेख़बर सो रहा है! यह नहीं हो सकता—उठने दो।

(शेरखाँकी आँख खुल जाती है।)

शेर०—(उठकर) यही तो मुनासिब बात है।

(शेरखाँ अपनी तरवार लेना चाहता है। सब हत्यारे उस पर आक्रमण करना चाहते है।)

सरदार—अभी नहीं; तरवार ले लेने दो।

शेर०—(तरवार लेकर) अब आ जाओ।

(शेरखाँ सबका सामना करता है। सब आदमी एक एक करके शेरखाँकी तरवारसे कटकटकर गिर जाते है।)

शेर०—(सरदारसे) तुम्हें न मारूँगा। तुमने मेरी जान बचाई है। हथियार रख दो।

(सरदार हथियार रख देता है।)

शेर०—अब बताओ, किसके हुक्मसे तुम मुझे मारने आये थे?

[नूरजहाँका प्रवेश।]

नूर०—(चारों ओर पड़ीहुई लाशें और शेरखाँको खूनसे तर देखकर डरी हुई आवाजमें) यह क्या!—ये सब कौन है?

शेर०—डरो नहीं मेहर। मैंने इन सबको समाप्त कर डाला है। इस सरदारने ही एक तरहसे मेरी जान बचाई है। बताओ सरदार, किसकी आज्ञासे तुम मुझे मारने आये थे?

सरदार०—सूबेदारके हुक्मसे।

शेर०—सूबेदार क्यों मेरी जान लेना चाहता है?

सरदार—बादशाहकी आज्ञासे।

(शेरखाँ एकबार नूरजहाँकी तरफ देखता है ।)

शेर०—(सरदारसे) जाओ ।

(सरदारका प्रस्थान ।)

नूर०—क्या सम्राट्की डाह यहाँतक है ! कैसा अत्याचार है ! कैसी दुष्टता है ! कैसा उपद्रव है !

सातवाँ दृश्य ।

स्थान—अकबरकी समाधिके पासका जंगल ।

समय—रात ।

[षड्यन्त्र रचनेवाले लोग खड़े हुए मानो किसीकी राह देख रहे है ।]

१ आदमी—शाहजादा विद्रोह करना स्वीकार कर लें तो है ।

२ आ०—कुछ विश्वास नहीं है ।

३ आ०—हाँ, उनकी बुद्धि चंचल है ।

४ आ०—मानसिह अगर हमारे सहायक होते !

१ आ—वह अकबरसे, उनके मरते समय जहाँगीरके विरुद्ध कभी युद्ध न करनेकी प्रतिज्ञा कर चुके हैं । वह अपनी अटल प्रतिज्ञासे तनिक भी विचलित नहीं हो सकते ।

२ आ०—हम अगर अपने काममे सफलता न पासकें तो हमारा कुछ बनता बिगड़ता नहीं है ।

३ आ०—वह लो, शादजादा साहब आते है ।

[खुसरूका प्रवेश ।]

सब—बन्दगी शाहजादासाहब !

४ आ०—हम लोग बहुत देरसे आपकी राह देख रहे हैं। आपने इतनी देर की शाहजादा साहब?

खुसरू—सुनो! पिताने मुझ पर सन्देह करना शुरू किया है। मै आज दादाकी समाधि पर फूल चढ़ानेका हीला करके आया हूँ। तो भी मैंने देखा, मेरे पीछे जासूस लगा हुआ है।

१ आ०—चाहे जो हो। आप इस समय स्वीकार करते है?

खुसरू—मैने सोचकर देखा कि पिताके विरुद्ध विद्रोह करना मेरी ताकतके बाहर है।

२ आ०—यह क्या शाहजादा साहब! ईंधन तैयार है। आप उसमें आग लगा दे, बस इतनी ही देर है। अब पीछे हटनेसे कहीं काम चल सकता है?

खुसरू—मैने ऐसी कोई प्रतिज्ञा नहीं की।

३ आ०—नही की! हम तो यही समझे थे।

खुसरू—और यह तैयारी निष्फल है। हम लोग विजय नहीं पा सकेगे। अगर मामा मानसिंह सहायता करते—

४ आ०—सहायता करते क्या? वह तो हमारे सहायक है ही।

खुसरू—कहाँ! मुझे तो यह हाल नहीं मालूम।

४ आ०—लेकिन वे प्रकट रूपसे कुछ नहीं करेंगे। गुप्त रूपसे सहायता करेंगे

खुसरू—करेंगे?—आप लोग निश्चितरूपसे जानते है?

सब—खूब अच्छीतरह जानते हैं।

खुसरू—(कुछ सोचकर)—लेकिन—

१ आ०—इस बारेमें फिर भी 'लेकिन' क्या शाहजादा साहब? हम लोगोंने प्रतिज्ञा की है कि जहाँगीरको उतारकर आपको सिंहासन पर अवश्य ही बिठलावेंगे।

खुसरू—(सोचकर) आप लोग अन्ततक मेरी सहायता करेंगे ?

सब—निश्चय !

खुसरू—देखो, यह गहरी रात है ! यह मेरे पूज्य पितामहकी समाधि है ! इस स्थान पर इस समय आप लोग सच्चे दिलसे कसम खाइए कि आप लोग अन्ततक हमारी सहायता करेंगे ।

सब—हम सब कसम खाते है ।

खुसरू—अच्छी बात है । तो मै सहमत हूँ ।

४ आ०—मैंने शाहजादा साहबसे एक प्रस्ताव किया था—

खुसरू—क्या ?—गुप्तरूपसे पिताकी हत्या ?—नहीं, मुझसे यह काम न होगा । पिता राज्य चले जाने पर भी सुखसे जीवन धारण कर सकेंगे । पिताके रक्तसे रंजित हाथमें मै राजदण्ड नहीं धारण कर सकूँगा ।

सब—अच्छी बात है ! अच्छी बात है—यही तो शाहजादेके योग्य बात है ।

१ आ०—तो कल सबेरे सेना लेकर दिल्लीको घेर लेंगे ।

२ आ०—निश्चय ही । लेकिन रसद और शस्त्रोंका अड्डा पहले हाथमें कर लेना चाहिए ।

३ आ०—शाहजादा साहब तैयार रहिएगा ।

खुसरू—तैयार रहूँगा । लेकिन उससे पहले कोई इस बातको जान न सके ।

४ आ०—कोई न जान सकेगा ।

खुसरू—तो यही बात पक्की रही । अब सब जाओ ।

नूर०—जाओ मत, कहती हूँ । अगर जाओगे, तो तुम्हारे प्राणों पर बन आना सर्वथा संभव है। इसमें सन्देह नहीं कि तुम्हारी हत्याकी विशेष तैयारी किये बिना अबकी बार सूबेदार नहीं आया है । इस बार जाओगे तो निश्चय जानो फिर न लौटोगे ।

शेर०—(रूखी हँसी हँसकर) अगर ऐसा ही हो, तो तुम भारतकी राजरानी बनोगी । बुरा क्या है !

नूर०—यह क्या दिल्लगीकी बात है !

शेर०—नहीं मेहर यह दिल्लगी नहीं है ! यह जीवन-मरणकी समस्या है ! मै सच कहता हूँ, अब जानेके लिए मुझे उत्साह नहीं है।

नूर०—यह क्या कह रहे हो नाथ !

शेर०—हाँ मेहर ! इस तरह भागकर जान बचानेसे मरना बहुत अच्छा है ! दिन-रात एक सन्देह, संकोच, शंकामे जीवन धारण कर रहा हूँ ।—क्यों ? किस अपराधसे ?—एकदिन तुमने एक बात कही थी, याद है मेहर ?

नूर०—क्या ?

शेर०—कि इतना सुख दैव देख नहीं सकता ।—हमारे सुखको भी दैव नहीं देख सका ।

नूर०—(कुछ देर चुप रहकर) चलो नाथ ! हम इस हिंसापूर्ण संसारको छोड़कर भाग चलें, बहुत दूरके किसी जगली गाँवमे जाकर किसानोंकी तरह अपना जीवन बितावे। सम्राट् जहाँगीरकी डाह इतने नीचे उतरकर हम लोगोंका पीछा न कर सकेगी ।

शेर०—ना मेहर ! अब न भागूँगा । अबकी विपत्तिके पास खुद जाकर उसे गले लगाऊँगा। अगर मौत होगी, मरूँगा,—सो भी तुम्हारे लिए (गद्गद स्वरसे) तुम्हारे लिए मरनेमें भी सुख है ।—और एक बात कहूँगा मेहर !—नहीं—कही डालूँ, मैं मरना ही चाहता हूँ ।

नूर०—क्यों नाथ !

शेर०—सुनोगी क्यों ?—मैंने समझ लिया है, मैं जान गया हूँ, हृदयमें इसका पूर्ण अनुभव कर लिया है कि अब तुम मुझे प्यार नहीं करतीं।

नूर०—नहीं प्यार करती ?

शेर०—ना ! मुझे तुम्हारी निगाहसे, क्षीण हँसीसे, भर्राई हुई आवाजसे, तुम्हारे इस 'नही प्यार करती ?' प्रश्नसे इस बातका पता लग रहा है।

(नूरजहाँ चुप रहती है।)

शेर०—कहाँ तुम्हें जहाँगीरकी बेगम होना चाहिए था, कहाँ तुम सम्राट्के दासानुदास शेरखाँकी स्त्री हुई। कहाँ तुम आगरेके संगमर्मरके महलमें रहतीं, कहाँ तुम इस दीन शेरखाँकी झोपड़ीमें पड़ी हुई हो। कहाँ तुम सूर्यकी तरह सारे भारतवर्षमें अपना प्रकाश डालतीं, कहाँ तुम इस गरीबके घरमें दीपककी तरह टिमटिमा रही हो।

नूर०—मैंने क्या कभी यह बात कही है ?

शेर०—ना, कहीं नहीं ! तो भी मैं समझता हूँ। हो सकता है, मैं मनुष्यचरित्रको ठीक न समझ सकता हूँ; किन्तु मैं प्रेमी—प्रेमका प्यासा हूँ। पानी न मिलने पर प्यासेको अपनी प्यास समझनेके लिए अधिक प्रयास नहीं करना पड़ता। मै तुम्हारे पास सूखा हुआ तालु लेकर गया, और वैसा ही लौटा।—मेहर ! प्रेम केवल विश्वास और सेवा नहीं चाहता। यह प्यास भीतरकी है।

नूर०—स्वामी ! मेरे देवता—मुझे क्षमा करो।

(पैरों पर गिर पड़ती है।)

शेर०—ना मेहर, अन्याय तुम्हारा नहीं, अन्याय मेरा है । जिससे ब्याह करनेके लिए शाहजादा—भारतका भावी सम्राट्—पागल हो रहा है, उससे मुझ दीन-दरिद्र शेरखाँका ब्याह करना—आगमे पतंगका फाँदना नहीं तो और क्या है ! मैंने सोचकर देखा है, अन्याय मेरा ही है ।

नूर०—अन्याय तुम्हारा है ?

शेर०—हाँ अन्याय मेरा है ।—तो भी मुझे दोष न देना मेहर ! सोचकर देखो,वह कैसा प्रलोभन था !जिस दिन तुम मेरी उद्भ्रान्त दृष्टिके आगे उदय हुई थीं—हे सुन्दरी ! जब मेरी उन्मुख वासनाके बीचसे तुमने अपने रूपका रथ चला दिया;जब जीवनका ध्यान शरीरधारी होकर मुझे अपने जागते हुए स्वप्नमें आकर दिखाई दिया; मै अपनेको सँभाल नहीं सका ! मै मनुष्य हूँ ! —दुर्बल मनुष्यमात्र हूँ ! और वह मेरी शुरू जवानी थी, मेहर !—शुरू जवानी थी !—जब आकाश बहुत ही नीला देख पड़ता है, पृथ्वी बहुत ही हरीभरी जान पड़ती है; जब ये नक्षत्र वासनाकी चिनगारियों जैसे और गुलाबके फूल हृदयके रक्त जैसे जान पड़ते हैं; जब कोकिलका गान एक स्मृतिसा और मलय-पवन एक स्वप्नसा जान पड़ता है; जब प्रणयीका दर्शन उषाका उदय, चुम्बन स-जला बिजलीकी चमक और आलिङ्गन आत्माका प्रलय जान पड़ता है !—उसी जवानीमें मैंने तुम्हारे रूपकी मदिरा पी थी !—नहीं जानता था कि मै विषपान कर रहा हूँ !—मेहर (हाथ पकड़कर) दरवाजा बंद करो ! मै जाता हूँ । (चुंबन) अगर अब लौट कर न आना हुआ तो यही आखरी मुलाकात है !—विदा ! (शीघ्र प्रस्थान ।)

नूर०—ओः !—(क्षणभर बाद) स्वामी ! अगर भक्ति प्रेमकी शून्यताको पूरा कर सकती तो मै वह भक्ति तुम्हारे पैरोंमें अर्पण कर देती । (प्रस्थान ।)

नवाँ दृश्य ।

स्थान—बर्दवानकी राह ।

समय—दिनके तीन बजे ।

[बंगालका सूबेदार कुतुब, उसके मंत्री और सैनिक खड़े खड़े बातचीत कर रहे हैं ।]

कुतुब—(दूरपर दृष्टि डालता हुआ) वह शेरखाँ आ रहा है न ?

मंत्री—हाँ जनाब ।

कुतुब—(सैनिकोंसे) सिपाहियो, तुम सब तैयार हो ?

सिपाही—हाँ हुजूर ।

कुतुब—याद रहे, अगर काम पूरा हो गया तो क्या पुरस्कार मिलेगा, और अगर किसीने पीछे पैर हटाया तो क्या दण्ड दिया जायगा। —याद है ?

सिपाही—याद है ।

कुतुब—बस ! चुपचाप खड़े रहो । मेरी आज्ञाकी राह देखते रहो। याद रहे और कोई नहीं, शेरखाँ है ।

(शेरखाँ आकर बंदगी करता है ।)

कुतुब—(बंदगीका जवाब देकर) आइए ! आप कुशलसे तो हैं ?

शेर०—हाँ जनाब ।

कुतुब—परिवारमें सब कुशल है ?

शेर०—हाँ जनाब ।

कुतुब—बर्दवानमें इस समय कोई बीमारी या किसी तरहकी अशान्ति तो नहीं है ?

शेर०—विशेष कुछ नहीं ।

कुतुब—यहाँ आपको कुछ कष्ट तो नहीं है ?

शेर०—कुछ नहीं ।

कुतुब—मै बर्दवानमें पहले कभी नहीं आया था ।—बहुत अच्छा शहर है ।

शेर०—बहुत अच्छा है ।

कुतुब—तो अब आप अपने घोड़े पर चढ़िए। मै हाथी पर चढ़ूँगा, धूमधामके साथ नगरके भीतर प्रवेश करना होगा ।

शेर०—जो आज्ञा ।

कुतुब—तो चलिए ।

(कुतुब और शेरखॉंका प्रस्थान । पीछेसे मंत्री जाते हैं । दो चार अनुचर पीछे अपेक्षा करते हैं ।)

कुतुब—(दमभर बाद नेपथ्यमें) सिपाहियो !—

शेर०—(नेपथ्यमें) सो मै पहलेहीसे जानता था कुतुब ! आज मरनेहीके लिए आया हूँ । मगर अकेले नहीं मरूँगा; पहले तुम आओ कुतुब !

(नेपथ्यमें शस्त्रोंकी झनकार, बन्दूककी आवाज, आर्त्तनाद और मनुष्योंका कोलाहल सुन पड़ता है । युद्ध करते करते शेरखॉं और सिपाही फिर प्रवेश करते हैं और पॉंच-छ: सिपाही शेरखॉंके वारसे पृथ्वी पर लोट जाते हैं ।)

शेर०—(ऊँचे स्वरसे) बस अब नहीं, मैं हथियार रक्खे देता हूँ ! मै मरनेके लिए तैयार हूँ । तुम अगर मुसलमान हो तो मरनेसे पहले मुझे ईश्वरसे प्रार्थना करनेके लिए थोड़ासा समय दो ।

(सब ठहर जाते है ।)

शेर०—तुम्हारा सूबेदार कुतुब मरा पड़ा है । तुम क्षुद्र जीव हो, तुमको मारनेसे क्या फायदा । अगर इस समय जरा सम्राट् जहाँ-

गीरको पा जाता !—जाने दो, लो हथियार रक्खे देता हूँ। (अस्त्र-परित्याग।)

(सब ठहरे रहते है)

(शेरखाँ पश्चिममुख होकर सिरपर धूल डालकर आँखे बंद करके प्रार्थना करता है। फिर उठकर खड़ा होता है ।)

शेर०—हो गया। सिपाहियो ! अब मै मरनेको तैयार हूँ। मुझे मारो।

(तीन तरफसे तीन गोलियाँ आकर शेरखाँके लगती है और वह पृथ्वी पर गिर पड़ता है।)



दूसरा अङ्क ।



पहला दृश्य ।

स्थान—आगरा, सम्राट्के खजांची आसफका घर ।

समय—तीसरा पहर ।

[बंदरराज और बादशाहके मुसाहब लोग वहाँ जमा होकर बातचीत कर रहे है ।]

१ मु०—विधवाके स्वामीकी हत्या कराकर उसके बाद उसे आगरेके महलमे लाकर रखना, हम लोगोंका काम होता, तो सभी लोग हमें अत्यन्त निर्लज्ज कहते ।

राजा—विधवाको कहीं सहारा नहीं है, कहाँ जाय,—हें हें—इसीसे बादशाहने दया करके—

२ मु०—उसको पकड़कर अपने घर लाकर, तालेमें बंद कर रक्खा है । उसके ऊपर सम्राट्का विशेष अनुग्रह होना देखा ही जाता है !

३ मु०—और उस अनुग्रहका कुछ हिस्सा राजासाहबके ऊपर भी आकर पड़ा है । साल भी नहीं बीतने पाया, ये राजाबहादुरका ख़िताब पा गये हैं । और जान पड़ता है, शीघ्र ही महाराज हो जायँगे ।

राजा०—हें हे—यह तो आप ही लोगोंका अनुग्रह है—आप ही लोगोंका अनुग्रह है ।

४ मु०—कैसा पाजी है ! तुम लोग (राजाकी ओर इशारा करके) इसे यहाँ आने क्यों देते हो, मेरी समझमें नहीं आता । इसको देखते ही मेरी देह जल उठती है ।

राजा०—हिः हिः हिः—

४ मु०—वह देखो इस तरह हँस रहा है, जैसे बड़े भारी मटकेमें-से आवाज़ आ रही है।—इसमे हँसनेकी क्या बात हुई राजा?

२ मु०—सुना है, विधवा अपूर्व सुन्दरी है।

१ मु०—लेकिन महलमें लाकर, दो साल होते आते है, सम्राट्ने उसका मुँहतक नहीं देखा; यह कुछ आश्चर्य सा जान पड़ता है।

राजा—बादशाह अपने मित्र सूबेदारकी मृत्युसे ऐसे व्यथित हुए हैं कि उन्होंने शेरखाँकी विधवाका मुँह न देखनेका प्रण किया है।

३ मु०—सम्राट्ने विधवाके पतिकी हत्या कराकर उसे आगरेमें लाकर महलके भीतर पहरेमें रक्खा है उसका मुँह न देखनेके इरा-देसे—क्यो?

२ मु०—बल्कि मैने सुना है, विधवाने ही सम्राट्का मुँह न देखनेका प्रण कर रक्खा है।

१ मु०—यही संभव है। पतिकी हत्या करनेवाले पर कहीं स्त्रीका अनुराग हो सकता है?

३ मु०—अनुराग न होकर विशेष राग (क्रोध) होना ही संभव है।

१ मु०—तो फिर ' राग ' के पहले एक ' अनु ' आते क्या देर लगती है!—रागके (क्रोधके) पीछे जो आता है वही तो अनुराग है।

२ मु०—यह ' अनु ' अभीतक नहीं आया। मैने यह बात आय-शखाँके मुँहसे सुनी है। सच्ची खबर है।

(वेगसे आसफका प्रवेश।)

आसफ—ख़बर सुनी है?

सब—क्या! क्या!

आसफ—शाहजादा खुसरूने दिल्लीको घेरा था, पर इसमें कृतकार्य न होकर वे लाहौरकी तरफ भाग गये थे। सेना लेकर फरीदने उनका

पीछा किया था। उसके बाद अभी खबर आई है कि शाहज़ादा पकड़ लिये गये।

१ मु०—हाँ !

२ मु०—कब ?

३ मु०—कहाँ ?

४ मु०—किसने कहा है ?

(सब लोग आसफको चारों ओरसे घेर लेते है।)

(धीरे धीरे आयशका प्रवेश।)

१ मु०—वह लो, आसफके पिता आगये।

२ मु०—जनाब, शाहजादा खुसरू पकड़ लिये गये ?

आयश—हाँ शेखजी।

३ मु०—तो यह खबर ठीक है ?

आयश—ठीक खबर है। बेचारा शाहजादा ! दस आदमियोंने पहले उसे नचाया और फिर समय पर वे आप दूर खिसक गये।

४ मु०—सम्राट् अपने बेटेको क्षमा कर देगे।

आयश—यह बात सहज नहीं है। मैं जानता हूँ।

राजा—बादशाह सलामत बहुत ठीक विचार करते हैं। किसीका कुछ भी पक्षपात नहीं करते। दोषीको दण्ड और धार्मिकको पुरस्कार देनेमें हमारे बादशाह—हें हें—

आयश—(राजाकी तरफ रूखी दृष्टिसे देखकर) राजा, देर हो गई ! आप अभीतक सम्राट्के पास नहीं गये ?

राजा—जा ही रहा था, राहमें इन लोगोंके साथ दो बातें—हें हें।—

आयश—ये लोग अच्छी तरह निहाल हो गये। अब आप सम्राट्के पास जा सकते है।

(राजा सिर झुकाते चले जाते हैं ।)

४ मु०—वह देखो ! कैसे कुत्तेकी तरह दुम हिलाते चला गया । (तीसरे मुसाहबसे) देखा ?

३ मु०—देखा, वह शीघ्र ही महाराज होगा ।

४ मु०—क्यों ?

१ मु०—जो लोग कुत्तेकी तरह दुम हिलानेकी विद्या जानते है वे एक न एक दिन महाराज होंगे ही ।

(तीसरा मुसाहब सिर हिलाकर अपनी सम्मति जताता है ।)

१ मु०—शास्त्रमें यह बात लिखी है ।

४ मु०—चलो हम लोग भी चलें। दरबारके समयमें देर हो गई है ।

(आयश और आसफके सिवा सब चले जाते है ।)

आयश—(धीरेसे) आसफ !

आसफ—अब्बा ।

आयश—सम्राट्ने मुझे फिर बुला भेजा था । उन्होने मुझे बहुत प्रलोभन दिखाकर कहा—तुम अपनी बेटीको अगर राज़ी कर सकोगे तो तुम्हें मै मन्त्री बना दूँगा ।

आसफ—आपने क्या उत्तर दिया पिता ?

आयश—मैंने कहा, जहाँपनाहकी अनुमति हो तो मै खजाञ्चीके कामसे इस्तीफा दे दूँ ।

आसफ—इस पर सम्राट्ने क्या कहा ?

आयश—नाराज होकर कहा—अच्छा, देखा जायगा ।—आसफ, मैं यह पद छोड़नेके लिए तैयार हूँ । तुम भी आगरा छोड़नेके लिए तैयार हो जाओ ।

———

दूसरा दृश्य ।

स्थान—सम्राट्का दरबार ।

समय—प्रातःकाल ।

[जहाँगीर और उनके खजांची आयश खड़े हुए बातचीत कर रहे हैं । दूर पर सम्राट्के दूसरे पुत्र परवेज, तीसरे पुत्र शाहजहाँ और छोटे पुत्र शहरयार तीनों खड़े हैं ।]

जहाँ०—जानता हूँ आयश, सब घरके खेदे हुए कुत्ते हैं ! मैंने उनके घूस लेने पर, अत्याचार पर, बुरे आचरण पर नाराज होकर उन्हें उनके सूबेसे अलग कर दिया है । उनकी सड़ी हुई समझकी बद-बूसे व्याकुल होकर मैंने उन्हें दूर कर दिया है । इसीसे उन्होंने विद्रोह किया है । किन्तु यहीं पर उनकी सजाका अन्त नहीं हुआ, आयश । मैं इन साजिश (षड्यन्त्र) करनेवालोंके नामोंकी फेहरिस्त चाहता हूँ । पूरी सजा अभी नहीं दी गई !—वह लो खुसरू आगया—

(पहरेदारोंके बीच कैदीकी हालतमें खुसरूको लेकर महाबतखाँका प्रवेश । जंजीरमें बँधे हुए खुसरू सिर झुकाकर जहाँगीरके सामने खड़े होते है । जहाँ-गीर कुछ देरतक उनके चेहरेकी तरफ देखते हैं ।)

जहाँ०—खुसरू, तुम किस अपराधमें पकड़े गये हो, जानते हो ?

खुसरू—जानता हूँ ।

जहाँ०—खुसरू, मैंने तुम्हे चिताकर सावधान कर दिया था ।

खुसरू०— जानता हूँ पिताजी ।

जहाँ०—अपराध स्वीकार करते हो ?

खुसरू—करता हूँ ।

आयश—जहाँपनाह ! शाहजादेकी उमर अभी थोड़ी है । चार आदमियोंने इन्हें भड़का दिया था ।

जहाँ०—उन्हीं लोगोंके नाम मैं जानना चाहता हूँ। खुसरू, वे लोग कौन हैं ? उत्तर दो। चुपके रहनेसे मैं तुम्हें नहीं छोड़ूँगा। उन्हें आगके कुण्डमें डालूँगा। उन्हें शेरको खिलाऊँगा। बताओ, वे कौन हैं ? कौन हैं वे ?

खुसरू—अब्बा, मैं उनके नाम नहीं बताऊँगा।

जहाँ०—नहीं बतावेगा ?—कुलांगार ! तुझे बताना पड़ेगा। मैं तुझसे कहलाऊँगा। मै तुझे यन्त्रणाके यन्त्र पर चढ़ाऊँगा। मै कोड़ों-की मारसे तेरी पीठकी खाल खिंचवा लूँगा। तू सोचता है, मैं अपना पुत्र समझकर तुझको क्षमा कर दूँगा ? तो तू मुझे नहीं पहचानता ! —अब भी उनके नाम बता दे।

खुसरू—मुझे जो चाहे दण्ड दीजिए। उनके नाम मेरी जबानसे नहीं निकल सकते। जो जी चाहे, करिए।

जहाँ०—जो जी चाहे करूँ ? अच्छा तो वही सही। पहरेदार ! इसे कैदखानेमें ले जा।—अबदुल ! देखो, इसके हाथ-पैर लोहेके खंभमें बाँधकर इसे दिनभर खड़ा रक्खो। पीठ पर कोड़े मारो।—खुसरू ! मैं तुम्हारे साहसको और सहनशीलताको जानता हूँ। जाओ, ले जाओ। —क्या रो रहे हो ? उनके नाम बताओगे ?

खुसरू—नहीं।

जहाँ०—ले जाओ।

(सिपाही खुसरूको ले जानेके लिए उद्यत होते है।)

महाबतखाँ—(आगे बढ़कर) जहाँपनाह, मेरा एक निवेदन है। (सिपाहियोंसे) ठहरो।

जहाँ०—क्या चाहते हो महाबतखाँ ?

महा०—जहाँपनाहकी आज्ञाका प्रतिवाद आजतक मैने नहीं किया, —आज करता हूँ। सुनिए अनुग्रह करके, फिर चाहे जो आज्ञा दीजिएगा।

जहाँ०—(कुछ सोचकर) अच्छा कहो, कोई जिसमें यह न कहे कि जहाँगीरने अच्छी तरह विचार किये बिना ही दण्ड दे दिया ।

महा०—जहाँपनाह, शाहजादा खुसरूने बड़ा घोर अपराध किया है । यह सच है । इन्हें अबकी बार क्षमा कीजिए । और अगर दण्ड ही देना है तो शाहजादेके योग्य दण्ड दीजिए । साधारण अपराधीकी तरह दण्ड न दीजिएगा ।

जहाँ०—सम्राट्का पुत्र होनेके कारण उचित दण्ड न दूँगा? मैंने पहले क्या कभी इस तरहका पक्षपातपूर्ण न्याय किया है महाबतखाँ ?

महा०—यह पक्षपातपूर्ण न्याय नहीं है । पदवीकी एक मर्यादा होती है । जहाँपनाहने भी एक दिन स्वर्गीय महात्मा अकबरके विरुद्ध विद्रोह किया था । वह अगर आपको ऐसा दण्ड देते ?

जहाँ०—उनका न्याय-विचार मेरी तरह समदर्शी न था ।

महा०—नहीं खुदावन्द ! वे पदवीकी मर्यादा समझते थे । आज जो भारतवर्ष जहाँपनाहको भारतवर्षका सम्राट् कह कर सलाम करता है सो भी उन्हीं महात्माके सुविचारका फल है । वे चाहते तो आज शायद ये शाहजादा खुसरू ही भारतके सम्राट् होते, और शायद इन्हींके आगे जहाँपनाहका न्याय होता ।

जहाँ०—(क्रोधके स्वरमें) महाब्रत !

महा०—जहाँपनाह ! सेनापति महाब्रतखाँ जैसा योद्धा है वैसा बातचीतमें होशियार नहीं है । माफ कीजिएगा जहाँपनाह ! लेकिन शाह-जादा खुसरूके लिए मैं भी जहाँपनाहसे कृपाकी भीख माँगता हूँ चार आदमियोंने मिल कर इन्हें भड़का दिया था । नहीं तो इनका चरित्र बड़े ऊँचे दर्जेका है ।

जहाँ०—बड़े ऊँचे दर्जेका है !

आयश—विचार करके देखिए खुदावन्द, जब षड्यन्त्र रचनेवाले जहाँपनाहकी हत्या करनेके लिए इन्हें उत्तेजित कर रहे थे तब इन्होंने उस प्रस्तावको नामंजूर कर दिया था। और आज यह उन्हीं कायर षड्यन्त्र रचनेवालोंके नाम न बताकर उनको जो सजा मिलनी चाहिए सो अपने ही सिर लिये लेते हैं, इससे भी इनका महत्त्व ही प्रकट होता है।

जहाँ०—किन्तु उनके नाम जाननेकी मुझे जरूरत है।

आयश—उनके नामोंके पता लगानेका काम मेरे जिम्मे रहा।

जहाँ०—अच्छा सिपाहियो! शाहजादेको क़ैदखानेमे ले जाओ। दण्डके बारेमे फिर सोचा जायगा।

(खुसरूको लेकर पहरेदारोंका प्रस्थान।)

जहाँ०—परवेज, तुम मेवारके युद्धमे हार आये। तुम इतने निकम्मे हो, यह मुझे मालूम न था। महाबतखाँ, अबकी तुम मेवार पर चढ़ाई करो। और परवेज, तुम महाबतखाँके साथ जाओ। युद्ध किसे कहते हैं, जाकर सीखो।

परवेज—जो आज्ञा पिताजी।

जहाँ०—और खुर्रम, अबकी तुम्हें दक्खिनके युद्धमें जाना होगा, जानते हो?

खुर्रम—जानता हूँ पिताजी।

जहाँ०—शहरयार, तुम यहाँ कहाँ!—हकीम आये थे?

शहर०—आये थे।

जहाँ०—क्या कहा?

शहर०—दवा दे गये हैं।

जहाँ०—वही जाकर खाओ। तुम यहाँ क्यों हो? अन्तःपुरमें जाओ। (प्रस्थान।)

[दूसरी ओरसे महाबतखाँ और अन्यान्य सभासद जाते है।
परवेज, शाहजहाँ (खुर्रम) और शहरयार रह जाते है।]

शाह०—सच बात है, भाई तुम मेवारमें क्या उलटी तरवार लेकर लड़े थे?

परवेज—युद्ध जैसे किया जाता है, वैसे ही किया था। लेकिन वह देश अपरिचित था। फिर जिस दिन युद्ध हुआ उस दिन हम युद्धके लिए तैयार नहीं थे।

शाह०—तुम शायद तमाखू पी रहे थे?

परवेज०—तुम्हारा खयाल ठीक है खुर्रम; तमाखू ही पी रहा था। आगरेसे एक पेटी मुश्की तमाखूकी ले गया था।

शाह०—भाई, तुमने यही भूल की। तमाखू, तकिया और औरत, ये तीन चीजे कभी युद्धके मैदानमे न ले जाना चाहिए। आराम और युद्ध, तेलमें पानीकी तरह बिलकुल ही मेल नहीं खाते।

शहर०—आश्चर्य है! तुम लोगोंके पास क्या युद्धके सिवा और कोई बात ही नहीं है? यह जगत् क्या एक हत्याशाला है?—इन सब बातोको छोड़कर देखो भाई, आकाश कैसा नीला है, पृथ्वी कैसी हरी-भरी है; पक्षियोके बोल सुनो, नदीके जलका कलरव सुनो। इस संपूर्ण विश्वकी सुषमाका हृदयसे अनुभव करो।—

शाह०—शहरयार! जैसे बुराई जितनी ढकी रहे उतनी ही वह सुन्दर जान पड़ती है, वैसे ही तुम जितना कम बोलो उतना ही अच्छा। तुम चुप रहो।

शहर०—तुम्हीं ऐसे लोगोंने मिलकर ऐसे सुन्दर जगतको कुत्सित बना रक्खा है। (प्रस्थान)

परवेज—शहरयार पूरा पूरा कवि है। इसी तरह बीमारीके पलँग पर पड़े पड़े एकटक आकाशकी ओर ताका करता है, नदीकी तरफ देखा करता है। उस समय अगर कोई उसका सिर भी काट डाले तो उसे खबर न हो।

शाह०—प्लेटोंने क्या यों ही अपने कल्पित राज्यसे कवियोंको निकाल दिया है?

तीसरा दृश्य।

स्थान—आगरेके महलमें नूरजहाँका कमरा।

समय—दोपहरसे पहले।

[नूरजहाँ अकेली पुस्तक पढ़ रही है।]

नूर०—ना, अब अच्छा नहीं लगता। (पुस्तक रखकर आइनेमें अपना चेहरा देखते देखते अलकावली सँभालते सँभालते) इसी चेहरेके लिए इतना हुआ!—हाय उदार स्वामी! इसी रूपने तुम्हारी जान ले ली! इस रूपने?—या मेरे कठिन अकृतज्ञ हृदयने? ईश्वर! ईश्वर! क्यों मैं कभी उन्हें प्यार नहीं कर सकी? उनसे बढ़-कर प्यार करनेका पात्र और कौन था? देवोंका ऐसा शरीर, सिंहका ऐसा वीर्य, माताका ऐसा स्नेह, बच्चोंका ऐसा भोलापन था!—तो भी तुम्हें प्यार नहीं कर सकी। ईश्वर जानते हैं—तुम्हें प्यार कर-नेके लिए मैंने अपने हृदयके साथ कितना युद्ध किया है। तो भी प्यार नहीं कर सकी। इसीसे तुमने बहुत ही खीझकर अपनी खुशीसे मौत-को बुला लिया। मेरी उच्च आशाने ही तुम्हारा सर्वनाश किया; साथ-ही मेरा भी सर्वनाश किया।—नहीं, तो भी युद्ध करूँगी। इस शैतानीका दमन करूँगी। वह शैतानी तुम्हारे मरनेके बाद

मुझे महलमें जरूर खींच लाई है। लेकिन मैंने भी, आज चार साल बीत गये, बादशाहका मुँह नहीं देखा; देखूँगी भी नहीं। देखूँ, कौन जीतता है।—स्वामी! तुम मरे हो मेरे कारण, मैं भी तुम्हारे ही लिए मरूँगी! तुम मरे हो औरोंसे युद्ध करके, मैं मरूँगी अपने ही साथ युद्ध करके। तुम मरे हो दम भरमें, मैं मरूँगी तिलतिल करके। तुम गये हो और मेरे लिए रख गये हो—एक जीवित-समाधि!—वह लैला जा रही है।—पुकारूँ।—लैला, लैला!

लैला—(भीतर आकर) क्या अम्मी!

नूर०—लैला मेरी छातीसे लग जा। लैला! मेरा सर्वस्व!

लैला—क्या हुआ अम्मी?

नूर०—लैला, क्यों दिनरात तेरा चेहरा उदास बना रहता है? नजर नीचे रहती है। तेरा यह दीन वेष क्यों है?

लैला—क्यों? जानती नहीं हो?—अम्मी, तुम यहाँ आईं क्यों?

नूर०—नहीं तो क्या कर सकती थी?

लैला—विष खा सकती थीं! माँ, जीवनका इतना मोह है! जिस पाजीने मेरे पिताको मरवा डाला उसी नीच, कायर, अधम, जल्लादके महलमें—

नूर०—चुप चुप!

लैला—चुप?—मैं इस बातको दिनरात अपने हृदयकी तहमें दबाये रक्खूँगी? तुमने यही सोच रक्खा है? मैं सारे भारतवर्षमें इसका ढिंढोरा पीटूँगी, कि उसके सम्राट्ने गुण्डे लगाकर मेरे बापकी हत्या कराई है! मैं यह बात कहूँगी, कहूँगी, कहूँगी, !—जब तक मेरा तालू सूख न जायगा; जबतक सारे वायुमण्डलमें यह उच्चारण

छा न जायगा; जब तक उस कलंककी कालिमासे सारा आकाश काला न पड़ जायगा, तबतक कहूँगी ! यह बात मै सम्राट्के भरे दरबारमें कहूँगी—जब तक कि सम्राट् लज्जाके मारे सिंहासनसमेत धरतीमें धँस न जायगा ! एक बार सुयोग भर मिल जाय।

नूर०—बेटी ! तुम अगर महलके भीतर इस तरह चिल्लाती फिरोगी तो मैंने पति तो खोया ही है, कन्या भी गँवाऊँगी !

लैला—क्या बादशाह मेरी भी हत्या करेगा ? करे। मै डरती नहीं हूँ। तुम्हारी तरह मुझे जान इतनी प्यारी नहीं है ! हा धिक्कार है !—चलो अम्मी, यहाँसे हम चल दे।

नूर०—आज्ञा नही है लैला।

लैला—आज्ञा नहीं है ? हम क्या कैदी है ?

नूर०—हाँ बेटी।

लैला—किस अपराधसे ?

नूर०—मालूम नहीं।

लैला—(कुछ देर चुप रहकर धीरे धीरे) अम्मी ! तुम मुझसे कहती हो कि तुम यहाँ अपनी इच्छासे नही आई। लेकिन कहाँ, आते समय तो तुमने कुछ विशेष आपत्ति नहीं की। चुपचाप पली हुई हरिणीकी तरह तुम इस महलके भीतर चली आई। तुम कहती हो, हम कैदी है। लेकिन इस कैदखानेसे निकलनेके लिए तुम्हारी कोई चेष्टा या आग्रह तो नहीं देख पड़ता। भिक्षुककी तरह इस विशाल अन्तःपुरके एक गंदे, बुरे, कुटीरमे पड़ी हो—बड़ी खुशीसे !—माँ, सच कहो, तुम यहाँसे जाना चाहती हो ?

नूर०—चाहती हूँ।

लैला—तो सम्राज्ञीके द्वारा सम्राट्की अनुमति माँग भेजो।

नूर०—सम्राट् अनुमति नहीं देंगे ।

लैला—(जमीन पर पैर पटककर) देंगे । मैं कहती हूँ, देंगे । क्या तुमने कभी सरल भावसे आग्रहके साथ अनुमति माँगी है अम्मी ? मंजूरी माँगो । माँगोगी ?

नूर०—माँगूँगी ।

लैला—अच्छा । अनुमति प्राप्त करनेकी ज़िम्मेदारी मैं अपने सिर लेती हूँ ।—देखूँ ! (लैलाका प्रस्थान ।)

नूर०—ओः—कैसी लज्जाकी बात है ! क्या भाग चलूँ ?—भाग जाना ही ठीक है । बस अब नहीं ! लैलाकी कोमल मगर तीखी झिड़कियोंकी चोटसे मुझे अपने अन्तःकरणके बुरे घावका पता लग गया है । यह भी समझमें आगया है कि यह घाव कैसा घृणित है । नहीं, मै भागूँगी, और किसी बातके लिए चाहे न हो, तेरे लिए भागूँगी लैला ! मैं तेरे निकट भी अविश्वास-पात्र नहीं बनूँगी । (स्वर धीमा करके) अभागिनी बेटी मेरी ! उस दिनके बादसे मैने उसके मुख पर हँसीकी रेखा देखी ही नहीं । कभी कभी वह बहुत देरतक बैठी सोचा करती है । फिर ऐसी एक लंबी साँस छोड़ती है कि उसके साथ जैसे उसकी आधी जान निकल जाती है ! कभी कभी मेरी तरफ टकटकी बाँधकर ताका करती है; फिर एकाएक दोनों आँखोंमें आँसू भर लाती है । और इसी अवस्थामें मुँह फेरकर चली जाती है । कभी अस्पष्ट स्वरमें आप ही आप न जाने क्या कहती है—इस तरहकी आकृति बनाती है—जिससे घृणा क्रोध और निराशा झलकती है । लो, वह शहनाईका बजना शुरू हो गया । कैसा विशाल यह महल है ! नहीं, अब नहीं । नहीं, यहाँसे चले जाना ही ठीक है ।

(खादिजाका प्रवेश ।)

खादिजा—बुआ, बहन कहाँ है ?

नूर०—मालूम नहीं। तू यहाँ कब आई खादिजा ?

खादि०—अभी थोड़ी ही देर हुई।

नूर०—किसके साथ आई है ?

खादि०—अम्मीके साथ।

नूर०—तेरी माँ कहाँ है ?

खादि०—सम्राज्ञीके पास। मैं जाऊँ, देखूँ लैला कहाँ गई। तुम आओगी बुआ ?

नूर०—ना।

खादि०—तो मैं जाती हूँ। (प्रस्थान।)

नूर०—यह मेरी भतीजी अनुपम सुन्दरी है। इसीसे मेरी भावज इसे लेकर इस अविवाहित कुमारमण्डलीमें आती जाती है। हाय नारी ! तेरी जाति ऐसी अधम है ! तेरा यह रूप क्या मछली पकड़नेके काँटेकी तरह केवल मर्दोंको फँसानेके ही लिए बना था ? यह क्या मर्दोंको फँसानेका फँदा ही है ? और हायरे अधम पुरुष ! अपने इतने बहुमूल्य—शौर्य, बुद्धि, विवेक आदि रत्नोंको तुम अनायास रमणीके निन्दनीय रूपके पैरों पर अर्पण कर देते हो ! (लंबी साँस लेकर) सबमें श्रेष्ठ पुरुषजातिकी यह दशा !

चौथा दृश्य।

स्थान—महल—अन्तःपुर।

समय—सन्ध्या।

[जहाँगीर रेवाके साथ खड़े हुए बातचीत कर रहे हैं।]

जहाँ०—रेवा, तुम तो सब जानती हो।

रेवा—जानती हूँ !—हा ईश्वर ! अगर मैं न जानती।

जहाँ०—जो पागल हो रहा है, उसके दोषका विचार कुछ अनुकम्पाके साथ किया जाता है। उस समय मैं पागल हो रहा था।

रेवा—विचार करनेवाले तुम कौन और मै कौन ? जो विचार करनेवाले है (ऊपरको हाथ उठाकर) वे करेंगे। मैं बीते हुए पापके लिए तुम्हारा तिरस्कार करने नहीं आई; किन्तु आगे जिसमें तुम्हारा मंगल हो, उसके लिए आई हूँ ! सुनो।

जहाँ०—कहो।

रेवा—शेरखाँकी विधवाको कैदसे छोड़ दो।

जहाँ०—मैने उसे कैदमें नहीं रक्खा रेवा। मैंने उसे महलमें लाकर रक्खा है, केवल इसी आशासे कि किसी दिन वह अपनी इच्छासे मेरे साथ ब्याह कर लेगी।

रेवा—मेहरुन्निसा अगर तुमसे ब्याह करनेको राजी होती तो मैं खुद उस ब्याहकी तैयारी करती। लेकिन चार सालमें भी जब वह ब्याह करनेके लिए राजी नहीं हुई तब उसकी इच्छाके विरुद्ध उसे महलमें कैद कर रखना घोर अन्याय है।

जहाँ०—एक बार क्या उससे मुलाकात भी नहीं कर सकता ?

रेवा०—नहीं, उसकी मर्जीके खिलाफ नहीं।

जहाँ०—रेवा! तुम्हारे ही अनुरोधसे अबतक मैंने शेरखाँकी विधवासे मुलाकात नहीं की,—हालाँ कि मै कभी कभी उसे मिलनेके लिए पागल सा हो गया हूँ।

रेवा—यही तो मनुष्यका काम है ! मनुष्य यदि सदा प्रवृत्तिके ही अधीन बना रहे, तो मनुष्य और पशुमें अन्तर ही क्या रह जाय ?

जहाँ०—मेहरुन्निसा बर्दवानको लौट जाना चाहती है ?

रेवा—हाँ स्वामी। मैं हाथ जोड़कर अनुरोध करती हूँ, तुम मेरी प्रार्थना स्वीकार करो।

जहाँ०—अगर तुम जानतीं, अगर तुम समझ सकतीं—

रेवा—जानतीं हूँ, समझ सकती हूँ! तो भी मेरे जीते रहते इस महलमें एक कुल-कामिनीका अपमान न होगा, और मैं यथाशक्ति तुम्हारी रक्षा करूँगी।

जहाँ०—रेवा, मैं देवीकी तरह तुम पर भक्ति रखता हूँ—तथापि—

[लैलाका प्रवेश।]

लैला—तथापि?—कहिए सम्राट्—तथापि?

(जहाँगीर चुप हो रहते हैं।)

लैला—सम्राट्, मै शेरखाँकी लड़की हूँ। मैं जानना चाहती हूँ कि किस अपराधसे सम्राट् मेरी माताकी मर्जीके खिलाफ उन्हें जन्मभरके लिए कैद किये रक्खे हैं!—किस साहससे सम्राट् शेरखाँके परिवारके ऊपर ये अत्याचारोंके ऊपर अत्याचार कर रहे हैं! ऊपर क्या ईश्वर नहीं है? पृथ्वीपरसे क्या धर्म एकदम उठ गया?

रेवा—स्वामी, मै तुम्हारे ही भलेके लिए कहती हूँ, मेहरुन्निसाको छोड़ दो।

जहाँ०—(लैलाकी तरफ देखकर और चार आँखें होते ही नजर नीची करके) अच्छा तो वही हो। विधवासे कहो, वह अपनी कन्यासहित बर्दवानको लौट जा सकती है।

लैला—सम्राट्की जय हो। (प्रस्थान।)

रेवा—यही तो मर्दका काम है। इस विधवाके ऊपर तुम्हारे अनुरागका हाल मैं जानती हूँ नाथ। इसी कारण तुम्हारा मानसिक बल

मुझे इतने गौरवकी बात जान पड़ता है।—स्वामी, कर्तव्यनिष्ठाका खयाल करके इस निष्फल अनुरागको भूलनेकी चेष्टा करो।

(प्रस्थान।)

जहाँ०—मैं क्या इतना अधम और अपदार्थ हूँ कि यह साधारण स्त्री मेरा कहा न माने! नहीं, उसको बड़ा घमंड है! एक दिन मैंने सोचा था कि यह स्त्री सचमुच मुझे प्यार करती है—हमारे मिलनेमें यदि कोई बाधा है तो केवल शेरखाँ है। वह क्या मेरा भ्रम ही था?—एक बार अगर उससे मुलाकात कर पाता! (इतना कहकर सिर झुकाये टहलते हैं। फिर कहते हैं—) अच्छा, एक बार अन्तिम चेष्टा करके देखूँ।—पहरेदार!

नेपथ्यमें—खुदावन्द!

जहाँ०—आयशखाँके लड़के आसफको हाजिर करो।

पहरेदार—जो हुक्म खुदावन्द।

(प्रस्थान।)

जहाँ०—आसफसे कहकर एक बार देखूँ। इतना परिश्रम, इतना कुचक्र रचकर उसे मुट्ठीमें पाकर यों अनायास छोड़ दूँगा?—कभी नहीं। एक बार यथाशक्ति अन्तिम चेष्टा करके देखूँगा। यों सहजमें न छोड़ूँगा।

पाँचवाँ दृश्य।

स्थान—नूरजहाँका कमरा।

समय—रात।

[नूरजहाँ अकेली टहल रही है।]

नूर०—मेरी अर्जी अन्तको मंजूर हो गई। मैं अब कहाँ जाऊँ? पिताके पास? या बर्दवानको? वहाँ मेरा कौन है? नहीं है, न सही, मैं जाऊँगी। मैंने जो कारीगरीके काम सीखे हैं, उन्हींको करके मैं अपना

साधारण खर्च चला लूँगी। मैं जाऊँगी! यहाँसे जितना ही दूर हो जाऊँ उतना ही अच्छा। मैं बर्दवान लौट जाकर अपने स्वामीके चरणोंमें मन लगाकर मरूँगी! और इस शैतानी प्रवृत्तिका दमन करूँगी।

[दासीका प्रवेश।]

दासी—सम्राज्ञी आ रही है जनाब।

नूर०—अच्छी बात है!

(दासीका प्रस्थान।)

(नूरजहाँ उठकर जल्दीसे अपनी पोशाक ठीक कर लेती है। रेवाका प्रवेश। नूरजहाँ बंदगी करती है। रेवा भी उसके जवाबमें बंदगी करती है।)

रेवा—मेहरुन्निसा, तुम्हें एक अच्छी खबर देने आई हूँ।

नूर०—सुन चुकी हूँ सम्राज्ञी, मेरी प्रार्थना मंजूर हो गई है।

रेवा—हाँ मेहर! तुम कल सवेरे कन्याको लेकर जहाँ चाहो वहाँ जा सकती हो।

नूर०—मै इसके लिए सम्राज्ञीके निकट अपनी कृतज्ञता प्रकट करनेमें असमर्थ हूँ। आपने बड़ा एहसान किया!

रेवा—मगर एक बात तुम्हें जता देना मैं उचित समझती हूँ।—तुम सम्राज्ञी होना चाहती हो?

नूर०—बेगम साहब! माफ़ कीजिएगा, मै कुछ होना नहीं चाहती। मैं केवल बर्दवानको लौट जाना चाहती हूँ।

रेवा—मैं यही पूछ रही थी कि तुम चाहती हो या नहीं। सुनो मेहर!—तुम इच्छा करनेसे ही सम्राज्ञी हो सकती हो। ऐसी वैसी सम्राज्ञी नहीं—प्रधान बेगम, भारतकी अधीश्वरी;—जो सम्मान आज मुझे प्राप्त है। दससाल पहले सम्राट् जैसे तुम पर मुग्ध थे, आज भी वैसे ही—बल्कि उससे भी अधिक—तुम पर मुग्ध हैं। वे और यह साम्राज्य

तुम्हारी मुट्ठीके भीतर है। चाहो तो मुट्ठीमें रख सकती हो और चाहो फेंक दे सकती हो।—क्या सोच रही हो मेहर ?

नूर०—सोच रही थी सम्राज्ञी—माफ कीजिएगा—सोच रही थी कि अपने साम्राज्य-सुख और स्वामीको इस तरह लापर्वाही या खुशीके साथ आप दूसरेको दे डाल सकती हैं !

रेवा—(कुछ मुसकराकर) हम हिन्दू जातिकी लड़कियाँ हैं। हमारी जातिने दूसरोंको बाँटनेहीके लिए जन्म लिया है। भला बताओ, यह भारतवर्ष भी हमने इसी तरह तुम्हारे हाथमें क्या नहीं दे दिया ? हमारी आशा यहाँ नहीं है मेहर—हमारी आशा और भरोसा (ऊपरकी ओर देखकर) वहाँ है।

नूर०—नहीं सम्राज्ञी। मैं सम्राज्ञी होना नहीं चाहती।

रेवा—अच्छी बात है। मैं तुमसे किसी बातके लिए जोर नहीं देती। केवल खबर देने आई थी। रात हो गई है। अब मै जाती हूँ मेहर।　　　(प्रस्थान।)

नूर—भारतकी अधीश्वरी ! (कुछ देर टहलते टहलते सिर हिलाकर) नहीं, यह बात सोचना भी पाप है।—लेकिन मेरे भविष्यमें क्या निष्फल रोनेको छोड़कर और कुछ नहीं है ?—ना, इस बारेमें अब मैं नहीं सोचूँगी।—ओः बड़ी गर्मी है ! (खिड़कीके पास जाकर पट खोल देती है। फिर आकर आप-ही-आप कहती है—) मनुष्यके हृदयके भीतर क्या दो जीव हैं ? नहीं तो लगातार यह युद्ध किसके साथ चल रहा है ?—उः कैसी गर्मी है !—नहीं, मै कभी यह न करूँगी। अबकी मैंने अपने हृदयको दृढ़ कर लिया है। मुझे मेरे इस संकल्पसे कोई विच-

लित न कर सकेगा। इस बारेमें मुझ पर, मेरी कन्याका, और मेरे मरे हुए स्वामीका एक सम्मानका ऋण है—कभी नहीं ऐसा करूँगी।

[दासीका फिर प्रवेश।]

दासी—आपके भाईसाहब आपसे मिलना चाहते हैं जनाब।

नूर०—कौन, आसफ ?

दासी—हाँ जनाब।

नूर०—अच्छा, ले आओ।

(दासीका प्रस्थान।)

नूर०—इस समय आसफ क्यों आये हैं ?

(आसफका प्रवेश।)

नूर०—क्या खबर है ? इस समय तुम एकाएक कैसे आ गये ?

आसफ—एक खबर है। अच्छी खबर है। मैं अच्छी ही खबर लाता हूँ।

नूर०—क्या खबर है ?

आसफ—कहता हूँ, ठहरो। जरा दम लेने दो।

(नूरजहाँ चुपचाप उसकी तरफ ताकती है।)

नूर०—(कुछ देर बाद) अब कहो क्या ख़बर है ?

आसफ—खबर सुनोगी ?—सुनो। सम्राट् तुमसे एकदफा भेंट करना चाहते हैं।

नूर०—भेंट करना चाहते है ? मतलब ?

आसफ—मतलब क्या तुम नहीं जानती मेहर ?

नूर०—हाँ, अनुमान कर सकती हूँ। अगर वही मतलब है तो उनसे मेरा सलाम करके कहना कि वह सम्मान मैं नहीं उठा सकती।

आसफ—क्या तुम यहाँसे जानेके पहले उनसे एक बार मिलना भी नहीं चाहतीं ?

नूर०—निश्चय ।

आसफ—मेहर ! तुम्हारे इस अद्भुत गँवारपनको मैं क्या कहूँ ? आज शेरखाँको मरे चार साल हो गये । मुसल्मानी शरहसे विधवा-विवाह मना नहीं है । चार सालका समय बीत गया—दिनपर दिन लहरोंकी तरह गुजरते चले जाते हैं, तो भी तुम्हारी याद सम्राट्के मनमें पत्थरकी लकीरकी तरह दृढ़, अटल और अक्षुण्ण बनी हुई है । तो भी तुम—

नूर०—आसफ ! मेरी याद सम्राट्के हृदयमें जितने उज्ज्वल भावसे अंकित है, अपने स्वामीकी स्मृति भी मेरे हृदयमें वैसी ही बनी हुई है ।

आसफ—लेकिन तुम अपने स्वामीको तो अब पा नहीं सकतीं—फिर यह कैसी नादानी है, कुछ समझमें नहीं आता ।

नूर०—तुम नहीं समझ सकोगे ! यह विरोध, यह पछतावा—शोक, यह जीकी जलन—तुम क्या समझोगे ?

आसफ—लेकिन सब काम छोड़कर यह शोक करना ही क्या तुम्हारे जीवनके कल्याणकी साधना है ?—जब कि तुम इच्छा करनेसे ही सारे भारतकी अधीश्वरी हो सकती हो—एक बातमें—एक इशारेमें—एक पलकमें—

नूर०—मैं यह नहीं चाहती ।—तुम्हारा उपदेश वृथा है । मुझे राजी न कर सकोगे । जाओ ।

आसफ—(कुछ देर चुप रहकर धीरे धीरे) मेहर, आज तुम इस महासन्मानको फेंके देती हो । किन्तु बादको जब शिथिल बुढ़ापा तुम्हारे ऊँचे मस्तक पर आकर आसन जमावेगा, तब तुम्हारे मनमें एक निष्फल पछतावा होगा कि तुमने जवानीका कैसा सुयोग अपने हाथसे

लित क्या। जिस सुयोगको आज तुम लात मारकर जवाब दे रही हो उसे तब पैरों पड़कर भी न लौटा सकोगी।

नूर०—इन सबने एक कुचक्र रच रक्खा है! ये मुझे पागल बनाये बिना न छोड़ेंगे! (चिल्लाकर) तुम क्यों आये? जाओ।

आसफ—जाता हूँ मेहर। लेकिन यह आखिरकार फिर कहे जाता हूँ—सुनो। सोचो मेहर!—कैसा पद, कैसी मर्यादा आज तुम हाथमें पाकर छोड़े देतीं हो और इच्छा करते ही क्या हो सकती हो। आज इसी जगह, इसी घड़ी, ठीक हो जायगा कि तुम बाहर उतारी हुई जूतीकी तरह पड़ी रहोगी, या शाहीमहलके कमरेके केन्द्रमे ऊपर टँगे हुए झाड़की तरह प्रकाश डालोगी! राहकी कंगालिनी होना और भारतकी अधीश्वरी बनना—इन दोनोंमें एक बात पसन्द कर लेना क्या इतना कठिन है?

नूर०—कुछ कठिन नहीं है। मैने पसन्द कर लिया है। मैं राहकी कंगालिनी ही बनूँगी।

आसफ—तुम्हीं अकेली राहकी कंगालिनी न बनोगी मेहर! अपना यह सारा परिवार कंगाल बन जायगा। सम्राट्ने पितासे कहा है कि अगर तुम राजी हो जाओगी तो वे पिताको मन्त्रीका पद दे देंगे। और तुम अगर नहीं राजी हुई तो वे खजांची भी रहेंगे या नहीं, सन्देह है।

नूर०—(कुछ सोचकर) जानते हो आसफ, तुम क्या प्रस्ताव कर रहे हो? प्रस्ताव कर रहे हो कि मैं अपना शरीर, अपनी आत्मा, अपनी मर्यादा—जो कुछ अपना बचा है—सब एक साम्राज्यके लिए फेक दूँ! जो मेरे स्वामीकी हत्या करानेवाला है, जिसके लिए केवल एक तीव्र प्रतिहिंसा, खुली हुई तेज तरवारकी तरह, मेरे हृदयके भीतर प्रदीप्त रहनी चाहिए, उसको मैं प्रेमपूर्वक गले लगाऊँगी!

आसफ़—अगर तुम बदला ही लेना चाहती हो मेहर, तो इससे बढ़ कर सुयोग और क्या पाओगी? महलके बाहर तुम एक साधारण स्त्रीकी तरह पड़ी रहोगी; तुम्हारी शक्ति ही क्या होगी? लेकिन जो तुम सम्राज्ञी हुई तो तुम हर रोज, हर घड़ी बदला लेनेका सुयोग पाती रहोगी। देखो मेहर! विचार करो।

नूर०—यह भाग्य-चक्रका फेर है! मैं बराबर यही देखती आ-रही हूँ। दूरसे एक 'भँवर' मुझे घसीट रहा है, नहीं तो हम आगरे ही क्यों आये? नहीं तो उस दिन जहाँगीरसे चार आँखें क्यों हुईं? नहीं तो मै ऐसे स्वामीको प्यार क्यों नहीं कर सकी? नहीं तो मैं इस महलमें आनेसे पहले विष खाकर मर क्यों नहीं सकी? नहीं तो पिता, तुम और स्वयं दयावती सम्राज्ञी मेरे विरुद्ध कुचक्र क्यों रचती?—ओः! कैसी साजिश है! मेरे हृदयमें जो शैतानी है, उसे मैंने जीत लिया था! परन्तु इस समय तुम सब आकर उसके शरीक हो गये। मैं हार गई।

आसफ़—क्या कहती हो मेहर, कुछ समझमें नहीं आता।

नूर०—नहीं, तुम नही समझ सकोगे।—उसे जाने दो, अब यह कहो कि क्या तुम सब यही चाहते हो? पिता और तुम—सब यही चाहते हो?

आसफ़—क्या?

नूर०—कि मै सम्राज्ञी होऊँ।

आसफ़—हाँ चाहते है।

नूर०—तो फिर वैसा ही हो! लेकिन सावधान आसफ़। इसके बाद जो कुछ होगा उसके लिए मैं जिम्मेदार नहीं हूँ। याद रक्खो, पिंजड़े-में पड़ी हुई पागल शेरनीको तुम शहरकी सड़क पर छोड़े देते हो। जिस तूफानको मैं हृदयकी सारी शक्ति लगाकर दबाये हुए थी, वह

शक्ति हटाकर तुम तूफानको बुला रहे हो। अब यह तूफान बिना किसी रुकावटके इस साम्राज्यके ऊपरसे बहेगा।

आसफ—क्या करना चाहती हो?

नूर०—सो ठीक ठीक अभी तक मुझे भी मालूम नहीं। मगर हाँ इस शैतानीकी शक्तिको मैं जानती हूँ।—जाओ, सम्राट्से जाकर कहो—मैं उनसे ब्याह करनेको तैयार हूँ।

(आसफका प्रस्थान।)

नूर०—तो यह भारी साम्राज्य अब एक भारी भूकम्पसे काँप उठे।

छठा दृश्य।

स्थान—महलका एक कमरा।

समय—रात।

[मुसाहब लोग बैठे है। सामने नाचनेवालियाँ हैं।]

१ मु०—गाओ गाओ और गाओ। आज रातभर जलसा मनाना होगा—खुशी करनी होगी।

२ मु०—हाँ, आज बादशाहका ब्याह है। सहज बात नहीं है भैया। शेरखाँकी विधवाके साथ सम्राट् जहाँगीरका ब्याह है।

३ मु०—और साथ ही साथ सम्राट्के पुत्र खुर्रमके साथ विधवाके भाई आसफकी कन्याका ब्याह है। उसे तुम जैसे कुछ समझते ही नहीं।

२ मु०—अरे उन सब बेकार ब्याहोंकी बात जाने दो।

३ मु०—बेकार ब्याह? कैसे?

२ मु०—पहला ब्याह—क्या ब्याह है? वह तो बालकका जबानी पहाड़े याद करना है।

४ मु०—पहाड़े याद करना कैसा ?

२ मु०—असल हिसाब तो दूसरे ही ब्याहसे शुरू होता है। उसके बाद जितनी ही ब्याहोंकी संख्या बढ़ती जाती है उतना ही हिसाब किताब भी बढ़ता जाता है।

३ मु०—तो ब्याह ठहरा हिसाब सीखना ?

२ मु०—बड़ा भारी हिसाब है। भैया ! यह मैंने ठगाकर सीखा है।

४ मु०—सुना है, आसफ़की बेटी बहुत ही सुन्दर है।

२ मु०—सुना है क्या ! देखा है।

३ मु०—कैसी है ! कैसी है !

२ मु०—जानते हो, कैसी है ? ठीक परी जैसी है। परी तो तुमने देखी ही होगी ज़रूर ?

४ मु०—अर्थात् मनुष्य इतना सुन्दर नहीं होता। यही कहना चाहते हो ?

२ मु०—और भी अधिक बखान चाहो तो सुनो। उसकी दोनों आँखें कमलदलसे बड़ी, कान शंख ऐसे, नाक बंशीकी तरह, और चोटी नागिनकी तरह है। खूब समझ रहे हो ? रूप तुम्हारे ध्यानमें जमता जाता है ?—

१ मु०—अरे टीका-टिप्पणी रहने दो। वह तुम लोगोंमेंसे तो किसीकी स्त्री होगी ही नहीं; फिर उसका रूप वर्णन करनेकी क्या जरूरत है ? गाओ नाचो मज़ा करो।

[गानेवालियाँ गाती हैं।]

बिहाग—तिताला।

आज है नव उत्सवका रंग।
नये रत्न-आभूषण सज दो प्रकृति-सतीके अंग॥ आज०॥
पृथ्वीमें, आकाश-पवनमें, सागरमें एक संग।
आज नई किरणोंका उज्ज्वल फैला दो शुभ रंग॥ आज०॥

आज पुराना सभी हटा दो, जो है मलिन कुरंग—
उसे मिटा दो; देखे सब जग नया तुम्हारा ढंग ॥ आज० ॥
श्यामल; कोमल, सोना, हीरा आदिकसे एकसंग।
भुवन अलंकृत कर दो, भर दो सबमें नई उमंग ॥ आज० ॥
गान-तान जग उठें, बजें बहु बीना मुरज मृदंग।
भीतर-बाहर व्याप्त विश्वमें होवे नई उमंग ॥ आज० ॥
नव आलोक-पुलकसे पृथ्वी स्वर्गलोक एकसंग।
कर दो विगतशोक, जगका हो आज नया ही ढंग ॥आज०॥
नई हँसीसे, नई वासना उत्साहोंके संग—
जीवन-मरण बना दो उज्ज्वल, दे आशाका रंग ॥ आज० ॥

सातवाँ दृश्य।

स्थान—सम्राट्का अंतःपुर।

समय—सायंकाल।

[अंतःपुरके एक कमरेके बरामदेमें लैला अकेली टहल रही है। उसके साथ शाहजादा शहरयार है।]

शहर०—लैला, तुम्हारा यह जर्द और विषादसे भरा मुख, ये झुकी हुई उदास आँखें और यह काँपती हुई भर्राई आवाज क्यों है ! तुमको क्या दुःख है !

लैला—आप मेरा दुःख सुनकर क्या करेंगे शाहजादा साहब ?

शहर०—अगर हो सकेगा तो उसे दूर करनेकी चेष्टा करूँगा।

लैला—आप ?

शहर०—मैं जानता हूँ लैला कि मेरी क्षमता कितनी थोड़ी है; जानता हूँ कि सम्राट् मुझे उपेक्षाकी दृष्टिसे देखते हैं—राजपरिवार-के लोग अवज्ञाकी दृष्टिसे देखते हैं। तो भी चेष्टा कर सकता हूँ।

लैला—शाहजादा, आपको सब लोग उपेक्षाकी दृष्टिसे देखते हैं, यही आपका सौन्दर्य है ।

शहर०—मैं तुम्हारे कहनेका मतलब समझ नहीं सका ।

लैला—आप समझ नहीं सकेंगे । समझनेकी वृथा चेष्टा भी न करिएगा ।

शहर०—तुम भी मुझे अनादरकी दृष्टिसे देखती हो !

लैला—नहीं शाहजादा ! मैं आपकी असहाय अवस्थाको, आपके शरीर और मनकी कमजोरीको, आपकी वर्त्तमान और भविष्य दीनताको बहुत ही सुन्दर देखती हूँ ।

शहर०—क्या मेरी कोई बात तुम्हें सुन्दर देख पड़ती है लैला ?

लैला—आपके आगे झूठ कहनेमे मुझे कुछ लाभ नहीं है । आप बड़े ही दीन हैं—मुझसे भी दीन है ।

शहर०—तुम दीन हो लैला ! तुम सम्राज्ञीकी कन्या हो, तुम सम्राट्की—

लैला—बस शाहजादा । सम्राट्के साथ मेरा नाम लेकर मुझे कलुषित न करिएगा । हाँ मैं सम्राज्ञीकी कन्या अवश्य हूँ—हाय यह बात अस्वीकार करनेका कोई उपाय नहीं है !

शहर०—लैला, तुम भी एक पहेली हो ।

लैला—शाहजादा, मेरा चरित्र क्या आपको ऐसा ही जटिल जान पड़ता है ?

[दासीका प्रवेश ।]

दासी—(लैलासे) आपको बेगमसाहबाने याद किया है ।

लैला—मुझे ?

दासी—हाँ जनाब ।

लैला—बेगम साहबाने ?

दासी—जी हाँ बेगम साहबाने।

लैला—क्या मतलब है ?

दासी—यह कुछ मुझसे नहीं कहा।

लैला—अच्छा आती हूँ, जाकर कह दे।

(दासीका प्रस्थान।)

लैला—शाहजादा, मैं जानती हूँ, आप मुझसे प्रेम करते हैं। लेकिन उस प्रेमको कम करनेकी चेष्टा करिए।

शहर०—तुम मुझसे प्रेम नहीं करतीं ?

लैला—करती हूँ। अगर मुझे किसीसे प्रेम है तो आपसे; तो भी मै आपके साथ ब्याह नहीं कर सकती।

शहर०—मेरा अपराध ?

लैला—अपराध यही है कि आप जहाँगीरके बेटे हैं।

शहर०—शाहजहाँ भी तो जहाँगीरके बेटे हैं।

लैला—इससे क्या ?

शहर०—तुम्हारी बहन खादिजाने तो उनके साथ ब्याह किया है।

लैला—खादिजा आसफखाँकी बेटी है, शेरखाँकी बेटी नहीं है!—जाइए! आप क्यों मेरे एकान्तवासमे, मेरे दुःखमें, मेरी निराशाकी दूषित हवामें आकर अपनेको भी दुःखित करते हैं ?

शहर०—तो फिर तुम और किससे ब्याह करोगी ?

लैला—ना शाहजादा। इस बारेमें आप निश्चिन्त रहिए।

शहर०—तुम ब्याह नहीं करोगी ?

लैला—नहीं।

शहर०——क्यों लैला!——इस विशाल विश्वको आँख उठाकर देखो। देखो, वह सुनहली सन्ध्या आकाशके नील-हृदयमें सोई-हुई है । वह लहराता हुआ पवन हरीभरी धरतीको गले लगा रहा है । वह भौंरा सुगन्धित कलीका मुँह चूम रहा है ।——इस संसारमें कौन अकेला है?

लैला——तो फिर मुझे आप इस विश्वके बाहर समझिए। मेरा दुःख——(सहसा दोनो हथेली मलकर करुण स्वरमें) जाइए शाहजादा, जाइए! यह सब सुननेका मुझे समय नहीं है——मेरी वैसी अवस्था भी नहीं है।

शहर०——तुम्हे क्या दुःख है, सो मुझे जताओगी भी नहीं?

लैला——नहीं, आप समझ नही सकेंगे।——आप जाइए।

(शहरयारका प्रस्थान।)

लैला——तुम मेरा दुःख क्या समझोगे शहरयार! पृथ्वी पर क्या कोई भी समझ सकता है! मेरी मा——मेरे पिता जिसकी पूजा करते थे, यह कहना भी अनुचित न होगा——उसी पिताको जिसने निष्ठुर भावसे मरवा डाला——मेरी मा आज उसी जल्लादकी स्त्री है——एक साम्राज्यके लिए एक भूमिखण्डके लिए! (कहते कहते स्वरभंग हो जाता है)——मेरी मा आज पराई हो गई! मेरी सोनेकी मूर्तिको मेरे हृदयके सिंहासन परसे डाकू उठा ले गया! मेरा सब कुछ गया। और मैंने खड़े खड़े अपनी आँखोसे सब देखा! आँखोंमें आँसू नहीं थे। मुखमें आर्त्तनाद नहीं था। चुपचाप खड़े खड़े देखा की। कुछ कर न सकी। माको बचा नहीं सकी——बचा नहीं सकी। (प्रस्थान।)

आठवाँ दृश्य ।

स्थान—सम्राज्ञी नूरजहाँका सजा हुआ महल ।

समय—रात ।

[अमूल्य गहने पहने अकेली नूरजहाँ टहल रही है ।]

नूर०—मैं आज भारतकी सम्राज्ञी हूँ! किन्तु यह मेरे लिए गौरव है, या लज्जा है ! यह मेरी जय है या पराजय !—ओः कैसी हार है ! शैतानीके साथ इतने दिनो तक युद्ध करके अन्तको मुझे हार खानी पड़ी ।—मैं हार गई । मैंने अपना सब कुछ गँवा दिया। तो फिर अब काहेका भय है ! जब सम्राज्ञी हुई, तब सब बाधा, सब विघ्न मेरी राह-से हट जायँ ! जब विवेक खोया, तब सब दुबिधा और संकोच हृद-यसे दूर हो जाय ! जब सम्राज्ञी हुई हूँ, तब मनमाना शासन करूँगी। —लो वे सम्राट् आ रहे है ।

[जहाँगीरका प्रवेश । नूरजहाँका बन्दगी करना ।]

जहाँ०—नूरजहाँ ! तुमने सम्राज्ञी होनेके लिए ही जन्म लिया था। तुम्हारी सलाम करनेकी अदा तक सम्राज्ञीके समान है ।

नूर०—सम्राज्ञी होनेके लिए जन्म लिया था, सम्राज्ञी हुई। संसा-रमे कोई खुद चेष्टा करके बड़ा आदमी होता है, और किसीको संसार ही चेष्टा करके बड़ा आदमी बनाता है ।

जहाँ०—हाँ और वह उस लायक़ आदमी हुआ तो। रत्नको ही लोग खोज लाकर अपनी पगड़ीमे लगाते हैं ।

नूर०—और जिसके सिर पर वह पगड़ी रहती है उसके कंधेके लिए उसका सिर बहुत ही भारी हो जाता है, जहाँपनाह ।

जहाँ०—नूरजहाँ ! जो हो गया—

नूर०—सो हो गया । सच बात है। इसके माफिक सच बात संसारमें और कुछ नहीं है जहाँपनाह ।—उस बातको जाने दीजिए । क्या मै एक बात पूछ सकती हूँ जहाँपनाह ?

जहाँ०—क्या बात नूरजहाँ ?

नूर०—सुनती हूँ जहाँपनाहने शाहजादा खुसरूको कैदसे रिहा कर दिया है ?

जहाँ०—हाँ प्रियतमे ।

नूर०—शायद सम्राज्ञी रेवाने सम्राट्से इस बारेमे अनुरोध किया था ?

जहाँ०—हाँ—ना—अर्थात् उन्होंने मुँह फोड़कर कुछ नहीं कहा। मगर उनके आँसू, जो सारे हृदयका निषेध रहते भी उमड़ पड़ते हैं, उनकी दीर्घश्वास, जो भीतर रुकी हुई भापकी तरह सारे शरीरको कँपा देती है, उनका अव्यक्त अनुनय-विनय, जो अनिर्वचनीय भाषा द्वारा मुँह पर झलकता है, इन सब बातोंने आकर मुझको जीत लिया। इसके सिवा खुसरू मेरा पुत्र ही तो है !

नूर०—निश्चय। मगर (हँसकर) जब जहाँपनाहने मेरे भानजे शफीउल्लाको ‍ ातका दण्ड दिया था, तब आपने अपने न्याय-विचारकी कुछ अधि न बड़ाई की थी।

जहाँ०—वह तुम्हारी बहनका लड़का था, तुम्हारा लड़का नहीं था।

नूर०—नहीं, ले िन मेरा पोष्यपुत्र था ।

जहाँ०—पोष्यपुत्र और अपना पुत्र ! कितना अंतर है !—नूरजहाँ ! पुत्र क्या चीज है, तुम नहीं जानतीं।

नूर०—नहीं जहाँपनाह, यह जाननेका सुयोग मैने कभी नहीं पाया ।

जहाँ०—खुसरू एक तो मेरा बेटा है—

नूर०—तिस पर सम्राज्ञी रेवाका पुत्र है ।

जहाँ०—नूरजहाँ !

नूर०—जहाँपनाह।

जहाँ०—तुम स्थिर चित्तसे यह बात कहती हो ? रेवाके ऊपर तुम्हे डाह होता है ?

नूर०—कुछ कुछ डाह हो भी सकता है।

जहाँ०—मैं इसे संभव नहीं समझता।

नूर०—क्यो जहाँपनाह ?

जहाँ०—डाह या लागडाँट उन्हींमे होती है जो बराबरके होते है; लेकिन रेवा और तुम, दोनो जुदे जुदे जगत्‌की चीज़ हो। रेवा—ऊपर ऊँचे पर स्थित नक्षत्रकी तरह—स्थिर, प्रकाशमयी और निष्कलङ्क है ! और तुम उसके बहुत नीचे पूर्ण चन्द्रकी तरह—इतनी सुन्दर हो, क्योंकि इतने निकट हो !

दासी—(प्रवेश करके) खुदावन्द, सम्राज्ञी आपसे जरा मिलना चाहती है।

ज़हाँ०—उनकी पूजा समाप्त हो गई ?

दासी—हाँ खुदावन्द।

जहाँ०—चल, मै आता हूँ।

(दासीका प्रस्थान।)

जहाँ०—मै अभी आता हूँ नूरजहाँ। (प्रस्थान।)

नूर०—रेवा नक्षत्र और मै पूर्णचन्द हूँ ! इतना फर्क है—यह मै नही जानती थी। अच्छा तो देखूँ, उस नक्षत्रकी चमक इस पूर्णचन्द्रकी प्रभासे फीकी हो जाती है कि नहीं। नूरजहाँ देवी नहीं है। वह जब हुकूमत करने बैठी है, तब हुकूमत करेगी। वह और किसीकी प्रतिद्वन्द्वता नहीं सहेगी।

[लैलाका प्रवेश।]

लैला—(धीरेसे)तुमने मुझे बुलाया था ?

नूर०—हाँ लैला, मैंने तुम्हें बुलाया था।

लैला—प्रयोजन ?

नूर०—प्रयोजन है। और लैला ! बिना प्रयोजन क्या मेरे पास आना न चाहिए ?

लैला—नहीं। बिना प्रयोजन तुम्हारे पास न आना चाहिए !

नूर०—(कातर दृष्टिसे लैलाकी ओर देखकर) क्यों लैला ?

लैला—(स्थिर शुष्क स्वरमें) तुम्हारे साथ अब मेरा क्या सम्बन्ध रह गया है ?

नूर०—मैं तो तुम्हारी मा हूँ।

लैला—सुनती अवश्य हूँ !

नूर०—सुनती हो ?—सुनती हो ?—यहाँ तक !

लैला—हाँ सुनती हूँ ! किन्तु ठीक समझमें नहीं आता। ठीक विश्वास नहीं होता कि मेरी मा एक पृथ्वीके टुकड़ेके लिए अपनेको बेच सकती है। कभी कभी मुझे जान पड़ता है कि शायद मेरी मा और कोई थी। वह मर गई। उसके बाद पिताने तुमसे ब्याह किया; और तुम्हें मा कहना मुझे सिखाया।

नूर०—नहीं लैला ! मै अभागिन सचमुच तुम्हारी मा हूँ।

लैला—होओगी।—मेरे जीवनका सबसे बढ़कर दु:ख यही है कि तुम मेरी मा हो।—ओः ! लड़कपनमें किसीने मुझे अफीम खिलाकर मार क्यों नहीं डाला ! यदि मार डाला होता तो यह बदनामी मुझे सुननी न पड़ती। अगर इस समय भी कोई मुझे इस पत्थर पर पटक दे—मेरे इस शरीरके सैकड़ों टुकड़े हो जायँ !—ओः—मा, मै आत्महत्या करूँगी ! अब और सहा नहीं जाता—

नूर०—(खीझके स्वरमें) क्या नहीं सहा जाता लैला ?

लैला—यही दृश्य ! यह बीभत्स व्यभिचार ! यह चिन्ता कि मेरी माने साम्राज्यके लोभसे अपने स्वामीकी हत्या करनेवालेके साथ शादी की है ! जब वह जल्लाद आकर, तुम्हारा हाथ पकड़कर, तुम्हे प्रेयसी कहकर पुकारता है, तब—क्या कहूँ—मा, मेरे सब अंगोंमे मानों हजारों बिच्छू डसने लगते है ! क्या कहूँ—वह जलन कैसी है !—और वह जलन एक दिनकी नहीं, एक महीनेकी नहीं, नित्यकी है ! आँखोंके आगे नित्य देखती हूँ कि पापके कारखानेमे नया नया अविचार, अत्याचार और व्यभिचार तैयार हो रहा है ! ओः !—

नूर०—देखो लैला ! मै इस तरह नित्य तुम्हारी लाल आँखे और झिड़की नही सहूँगी।

लैला—क्या करोगी ? मुझे मार डालोगी ? आश्चर्य नही है। जो पतिके हत्यारेसे शादी कर सकती है वह कन्याकी भी हत्या कर सकती है। (अनुकम्पाके स्वरमें) हाय अभागिन स्त्री ! तेरे ऊपर क्रोध क्या करूँ ! कभी कभी तेरे लिए मुझे बड़ा दुःख होता है ! तू किसकी स्त्री थी, और अब किसकी स्त्री हुई है ! कहाँ वह शेरखा, और कहाँ यह जहाँगीर ! कहाँ अगाध असीम, स्वच्छ नील समुद्र, और कहाँ दुर्गन्धपूर्ण, क्षुद्र, कीचड़से भरी गढैया ! कहाँ शेर, और कहाँ सियार !—नारी ! लज्जा नहीं आती, दु.ख नही होता कि तूने अपने उस देवताके सिहासन पर अपनी इच्छासे एक कामुकको बिठाया है ! उस सरल, उदार, पूज्य, पवित्र, उज्ज्वल, महिमामय चरित्रके माहात्म्यको भूलकर आज तू एक नीच, हेय, कलुष-पंकिल पापकी उपासना करने बैठी है ! लज्जा नही आती कि स्त्रीका जो कुछ महान् है, वह स्नेह,

दया, कृतज्ञता, पुण्य—सब गँवाकर एक शैतानके हाथ तुमने अपनेको बेच डाला है।—

नूर०—चुप रह लड़की !

लैला—किस लिए नारी !—तू आज भारतकी सम्राज्ञी होकर सोचती है कि मैं तेरी टेढ़ी भौहे देखकर भयके मारे जमीनमें धँस जाऊँगी ? यह भूलकर भी न समझना ! याद रख, तू अगर जहाँगीरकी स्त्री है तो लैला भी शेरखाँकी लड़की है !

नूर०—(ऊँचे स्वरसे) लैला !

लैला—(वैसे ही स्वरमे) नूरजहाँ !

(दोनों क्रोधमे भरी हुई दो शेरनियोंकी तरह ज्वालामयी दृष्टिसे परस्पर ताकती है । इसी समय जहाँगीरका प्रवेश ।)

जहाँ०—यह क्या लैला ! यह क्या नूरजहाँ !

(दोनों चुप रहती है । नूरजहाँ रो देती है !)

लैला—रोओ रोओ, जिन्दगीभर रोओ, शायद उससे ही यह कलंककी कालिमा धुल जाय। तुम तो बुरी नही थीं। किसने तुम्हे यह सलाह दी ? किसने तुम्हें स्वर्गके राज्यसे खींच लाकर (जहाँगीरको दिखाकर) इस अस्थिकुण्डमे डाल दिया ?

जहाँ०—समझ गया। याद रख लड़की कि तू यद्यपि नूरजहाँकी कन्या है, तो भी मेरे धैर्यकी एक हद है।

लला—याद रखिएगा सम्राट् कि आप यद्यपि नूरजहाँके स्वामी है, तो भी मेरे धैर्यकी भी एक हद है।

जहाँ०—देखता हूँ तेरा साहस बहुत बढ़ गया है ! अबकी मै तुझे दण्ड दूँगा।

लैला—आप ?

जहाँ०—हाँ हाँ मै। तेरा व्यवहार असह्य हो उठा है। तेरे इस मिजाजको नर्म करना मैं जानता हूँ।

लैला—सम्राट्! लैला शेरखाँकी लड़की है। वह डरनेवाली नहीं है।—स्वेच्छाचारी डाकू! यही नीति लेकर तुम एक साम्राज्यका शासन करने बैठे हो? जहाँगीर! तुम इस समय शेरखाँकी लड़कीके सामने इस तरह खड़े हुए हो, यही मुझे बड़ा भारी विस्मय जान पड़ रहा है!—जरा मुझसे चार आँखें करो जल्लाद! देखूँ, तुममें कितना साहस है! देखो—याद रक्खो मै शेरखाँकी लड़की हूँ। देखो—देखूँ कितनी हिम्मत है!

जहाँ०—नूरजहाँ! इस शेरनीको अगर तुम मना न करोगी तो मै अल्लाहकी कसम खाकर कहता हूँ कि—

लैला—कि मुझे मार डालोगे! वही करो सम्राट्! तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ। मुझे मार डालो।—जैसे मेरे पिताको मार डाला है मुझे भी मार डालो। उसमे मुझे कमसे कम यह सान्त्वना अवश्य होगी कि मैं मरते दम तक तुम्हें कोस कोस कर मर सकूँगी!

जहाँ०—अच्छी बात है! ऐसा ही होगा।—पहरेदार!

नूर०—अबकी इसे क्षमा कर दीजिए जहाँपनाह! अबकी मेरा ही दोष है। मैने ही इसे छेड़कर खिझाया था।

जहाँ०—नहीं, मैं अब और नहीं सह सकता नूरजहाँ! इसका फैसला ही कर डालना होगा।—पहरेदार!

नूर०—(घुटने टेककर) जहाँपनाह, मेरा पुत्र नहीं रहा, कन्याको भी न नष्ट कीजिए! अबकी इसे क्षमा कर दीजिए।

जहाँ०—(कुछ सोचकर) अच्छा, अबकी क्षमा करता हूँ; लेकिन यही आखरी मर्त्तबा है नूरजहाँ। (लैलाको टहोका देकर) यही आखरी मर्त्तबा है। समझी लड़की? याद रहे।

(जहाँगीरका प्रस्थान । लैला घृणाकी दृष्टिसे जहाँगीरकी ओर देखती रहती है ।)

लैला—(सम्राट्के आँखोंकी ओट होने पर सहसा नूरजहाँकी तरफ देखकर) अम्मी !

नूर०—लैला !

लैला—एक काम करोगी ?

नूर०—क्या काम लैला !

लैला—तुमने जो पाप किया है वह मेरी सौ झिड़कियोंसे भी अब पुण्य तो हो नहीं सकता । अब कुछ प्रायश्चित्त करो !

नूर०—क्या प्रायश्चित्त ?

लैला—इस परिवारको नरकमें डालो । अगर स्वर्गके राज्यसे गिरी ही हो तो फिर पूरी तौरसे पिशाची बनो । तुम नागिनकी तरह इस शाही खान्दानको चारों ओरसे लपेटकर अपने विषसे नष्ट करो । इस परिवारका विनाश करो । मैं तुम्हारा कहा न माननेवाली लड़की हूँ; लेकिन इस मामलेमें तुम जो कहोगी वही करूँगी !—

(नूरजहाँका मुख उज्ज्वल हो उठता है ।)

नूर०—(लैलाका हाथ पकड़कर) जो कहूँगी वही करोगी ?

लैला—हाँ अम्मी ! मुझमें बुद्धि नहीं है । तुम अपनी शैतानी बुद्धि मुझे दो । मैं अपनी सारी शक्ति तुमको दूँगी । आओ, दोनो जनीं मिलकर एक भारी तूफ़ान उठावें ! तुम और मैं, आज मा और बेटी नहीं है । हम दोनो बहने है; दोनों शैतान हैं—हमारी एक गति, एक लक्ष्य और एक परिणाम है ।

तीसरा अङ्क ।



पहला दृश्य ।

स्थान—अन्त.पुरके महलका जनाना बाग ।

समय—चाँदनी रात ।

[खादिजा टहल टहल कर गा रही है ।]

गीत ।

क्यों इतना है चन्द्र मनोहर ?–रूप उसीका पाया है ।
क्यों इतना रंगीन कमल है ?–उसका रंग चुराया है ॥क्यों०॥
क्यों इतना है ललित कोकिलाका संगीत हृदयहारी ?
उसने भी उस प्रियतमहीका मीठा बोल सुनाया है ॥ क्यों० ॥
क्यों यों स्निग्ध सुगन्धित कोमल मलयपवन है ?–हाँ वह भी।
स्पर्श उसीका पाकर, लाकर, सब जगके मन भाया है ॥ क्यों०॥
गगनभुवनमें व्याप्त सदा ही रूप-प्रकाश उसीका है ।
विधिने सब सौन्दर्य उसीसे लेकर जगत बनाया है ॥क्यों०॥
उसके चरण हृदयमें रखती पृथ्वी, इससे ही उसको–।
मैं करती हूँ प्यार हृदयसे; मनमें वही समाया है ॥ क्यों० ॥
इस जीवनके दुख, अभाव सब, भाग्य-चक्रके फेर सभी ।
इन आँखोंके किरण-तले रह मने सहज भुलाया है ॥ क्यों० ॥

[शाहजहाँ जब प्रवेश करते है तब भी खादिजाका गीत समाप्त नही होता। शाहजहाँ भी उसमे कुछ विघ्न नहीं डालते–सुनते हैं। खादिजा आप अपने गीतमे मस्त होकर गा रही थी । शाहजहाँको देखकर गाना बंद कर देती है और दौड़कर शाहजहाँके लिपट जाती है ।]

खादिजा—कौन ? मेरे प्राणेश्वर ?

शाह०—प्राणेश्वर हूँ या नहीं, सो तो नहीं जानता। पर मै शाह-जहाँ अवश्य हूँ ।

खादिजा—मै अबतक तुम्हारी राह देख रही थी।

शाह०—मेरे परम सौभाग्य !—मै तुमसे एक बार यह पूछता हूँ खादिजा कि अभी तुम जो गाना गा रही थीं सो किसे लक्ष्य करके ?

खादिजा—सो क्या तुम जानते नहीं प्यारे ?

(शाहजहाँके दोनो हाथ अपने हाथोमें ले लेती है।)

शाह०—इसी तरह करके तो तुम गड़बड़ मचा देती हो।

खादिजा—तुम्हें ही लक्ष्य करके गा रही थी।

शाह०—तब तो तुमने मुझे बड़ी ही चिन्तामें डाल दिया।

खादिजा—क्यों ?

शाह०—मैने अपने चेहरेको अकसर आईनेमे देखा है। मैने देखा है कि वह न कमल है और न चन्द्रमा है।

खादिजा—मै तुम्हारे मुखमे जो सौन्दर्य देखती हूँ नाथ, वह सैकड़ों चन्द्रमाओं या कमलोंमें नहीं है। कारण, मै इस मुखमें एक महिमामय अन्तर्जगत् देखती हूँ। इन दोनों आँखोंके भीतर मै तुम्हारी प्रतिभा और सब प्राणियो पर दयाका भाव देखती हूँ। इस ऊँचे मस्तकमे एक साहस और अपनी मर्यादाके खयालकी झलक देखती हूँ। इन ओठोंके किनारोमें तुम्हारी दृढ़ प्रतिज्ञा और स्नेह देखती हूँ। मैने तुम्हारे शरीरमे ही तुमको पाया है, जैसे हिन्दूभक्त प्रतिमाके भीतर अपने देवताको पाता है।

शाह०—तो फिर तुम्हारा उद्धार निश्चित है—अच्छा, खादिजा तुम्हारे पिता आसफ और सम्राज्ञी नूरजहाँ सगे भाई-बहन है ?

खादिजा—हाँ नाथ !

शाह०—और तुम अपने बापकी लड़की हो ? और लैला नूर-जहाँकी लड़की है ?

खादिजा—हाँ।

शाह०—बड़े ही सोचमे डाल दिया !

खादिजा—क्यों नाथ ?

शाह०—ऐसा भी कहीं होता है ?

खादिजा—क्या नहीं होता ?

शाह०—यही कि तुम हुई ऐसी बेचारी सीधी-सादी, और नूर-जहाँकी लड़की है जैसे दूसरा सिकन्दरशाह। अन्तको उसने बेचारे शहरयारसे क्यो शादी कर ली, यह सोचकर मुझे बड़ा ही खटका लगता है।

खादिजा—वह उन्हे जरूर प्यार करती है।

शाह०—ऊँहु ! वह औरत प्यार करनेकी चीज ही नहीं है।—बेचारा शहरयार उस लैलाको लेकर क्या करेगा, सो कुछ मेरी समझमें नहीं आता।

खादिजा—करेगी क्या ?

शाह०—ऊँहुः ! बिलकुल ही मेल नहीं खाता। बल्कि लैलाके साथ ब्याह होना चाहिए था मेरा, और शहरयारके साथ ब्याह होना चाहिए था तुम्हारा।

खादिजा—तो क्या होता ?

शाह०—क्या होता, सो कुछ कह नहीं सकता। लेकिन हाँ उसको (लैलाको)काबूमे करके मुझे खूब आनन्द होता। और तुम सीधी सादी गौ हो, शहरयारकी बीबी होनेसे तुम्हारी भी जोड़ी ठीक मिल जाती।

लेकिन मै बराबर देखता आता हूँ कि जो जैसा चाहता है उसे वैसा नहीं मिलता ।—वे भाई खुसरू आ रहे है । तुम भीतर जाओ ।

(खादिजाका प्रस्थान । खुसरूका प्रवेश ।)

शाह०—क्यों भाई ?

खुसरू —कुछ खबर है ।

शाह०—क्या खबर है ?

खुसरू—पिताने तुम्हें बुला भेजा है ।

शाह०—क्यो ?—अचानक क्यो ?

खुसरू—दक्खिनके राजे विद्राही हो उठे है । तुमको फिर वहाँ जाना होगा उन्हे काबूमें लानेके लिए ।

शाह०—फिर !—अभी उस दिन तो मै उन्हें बादशाहके अधीन करके आया ही हूँ ।

खुसरू—उन्होंने फिर सिर उठाया है ।

शाह०—कैसा आश्चर्य है ! मै देखता हूँ, युद्ध करते करते ही मेरा शुरूका जीवन बीत गया ! जरा भी शान्ति नहीं पाई। अभी दक्खिनका सूबा जीत कर आया हूँ। फिर मेवार पर चढ़ाई की और वहाँ विजय प्राप्त की । अब फिर दक्खिन जाना पड़ेगा ।

खुसरू—खुर्रम, तुम्हारी वीरता देखकर मैं बहुत ही ताज्जुबमें हूँ ! मवारकी लाल ध्वजा ८०० बरससे मुगल-शक्तिको तुच्छ करके अपने पहाड़ी किलेकी दीवार पर फहराती आती है । उसी मेवारको तुमने खेलकी तरह जीत लिया ।

शाह०—(हँसकर) मैने मेवारको नहीं जीता ।

खुसरू—तुमने नहीं जीता ? यह क्या !

शाह०—सेनापति महाबतखाँ मेवारको जीत चुके थे, उसके बाद पिताने मुझे मेवारसे सन्धि करनेके लिए भेजा। मैने जाकर सुलह की। किन्तु प्रसिद्ध यह हुआ कि मैंने मेवारको जीता।

खुसरू—मगर महाबतखाँने इसका कुछ प्रतिवाद नहीं किया!

शाह०—यह उनकी उदारता है। वे उस सम्मानको नहीं चाहते। बल्कि—माळूम नहीं किस कारणसे—मेवारकी जयके संबंधमें वे अपनी बातको मानो दबाना ही चाहते है।

खुसरू—हाँ! यह मै नहीं जानता था। सो चाहे जो हो, उसके बाद रानाके साथ तुमने जो सन्धि की है उसमे तुमने बड़ी ही उदारता दिखाई है खुर्रम! हारे हुएके लिए ऐसी सम्मानकी सन्धि शायद पहले और कभी नही हुई होगी।

शाह०—दादा! देश, काल, पात्र देखकर शक्तिका व्यवहार किया जाता हैं। मेवारका राजवंश एक बहुत पुराना चिरधन्य राजवंश है।—जिस वंशमें बाप्पाराव, रानी चन्द्रावती, समरसिंह, प्रतापसिंहने जन्म लिया है उसी वंशका आज पतन हुआ है! उसके दुःख पर जरा गौर तो करो दादा! उसके उस दुःखके बोझको यथासंभव हल्का करनेकी चेष्टा भर मैने की है।

खुसरू—खुर्रम, मै तुम पर बड़ी श्रद्धा रखता हूँ और प्यार करता हूँ! मैं भी तुम्हारे साथ दक्खिन चलूँगा, अगर तुम इसमे सहमत हो और पिताजी अनुमति दें तो।—मैं युद्ध करना सीखूँगा।

शाह०—चलो, तो पहले पिताके पास चलें।

खुसरू—चलो।

शाह०—तुम चलो दादा, मै आता हूँ।

(खुसरूका प्रस्थान।)

शाह०—इन राजाओंकी इतनी हिम्मत ! ये उस दिन अधीनता स्वीकार कर चुके हैं । अबकी इन्हें पकड़कर इसी राजधानीमें ले आऊँगा ।—खादिजा, खादिजा !

[खादिजाका प्रवेश ।]

शाह०—खादिजा, दक्खिन चलनेकी तैयारी करो ।

खादिजा—यह क्या !

शाह०—यह क्या क्या ! वहाँके राजाओंने फिर सिर उठाया है, उन्हें परास्त करनेके लिए जाना होगा ।

खादिजा—तुम भी जाते हो ?

शाह०—नहीं तो तुम क्या ऐसी रुस्तम हो गई हो कि अकेले जाकर शत्रुदमन करोगी ? लैला होती तो शायद वह कुछ कर भी सकती ।—हाँ खादिजा, मैं भी जाऊँगा । पिताने मुझे बुला भेजा है । मैं अभी उनके पास जा रहा हूँ ।

खादिजा—नाथ ! (शाहजहाँका हाथ पकड़ती है ।)

शाह०—जाओ खादिजा ! यह नारीके रस भरे रंगीन ओठो और चंचल कटाक्षोके साथ क्रीड़ा करनेका समय नही है ।—सामने कठोर कर्त्तव्य है । (प्रस्थान ।)

खादिजा—(आँसू पोछकर) नहीं, मेरा ही अन्याय है । पुरुषोंके लिए कितने ही काम है । वे न-जाने कितना ज्ञान रखते है, और हम अभागिन स्त्रियोने—कुछ नहीं सीखा; केवल प्यार करना ही सीखा है । (प्रस्थान ।)

दूसरा दृश्य ।

स्थान—लाहौरके शाही महलका अन्तःपुर ।

समय—रात ।

[भारी पोशाक और जड़ाऊ गहने पहने नूरजहाँ अकेले एक विशाल कमरेमें टहल रही है ।]

नूर०—मैंने क्षमताकी मदिरा पी है ! मै हर रगमें उसकी गर्म उत्तेजनाका अनुभव कर रही हूँ !—यही तो जीवन है ! केवल आत्मरक्षा और जन्मदानके तन्त्र ही इस सृष्टिके महाचक्रको नही घुमा रहे हैं ! इसमें संभोग भी है ! नहीं तो पक्षी इतने आवेगसे क्यों गा उठता है? वृक्ष इतने विविध पत्र-पुष्पोंसे क्यो विकसित हो उठता है? नदीके वक्षःस्थलमें इतनी उछलती हुई फेन-पूर्ण तरंगे क्यो उठती हैं? आकाशमें चन्द्रमा क्यो इतना हँसता है? यदि भूख और प्यासका मिटना ही इस जीवनकी चरम लीला है तो आहारके इतने सरस और स्वादिष्ट होनेका क्या प्रयोजन था ? फूलोंकी सुगन्ध इतनी मधुर होनेका क्या अर्थ था ? संगीत इतना मधुर क्यो हुआ ? प्रतिभा केवल सत्य-राज्यका आविष्कार करके चुप नहीं है, वह कल्पनाके सुवर्णराज्यकी भी सृष्टि करती है ।—यही तो यथार्थ जीवन है ! मै आज केवल जीवनधारण नहीं करती, मै आज रगरगमें जीवनका अनुभव कर रही हूँ !

[दासीका प्रवेश ।]

नूर०—क्यों बाँदी ?

दासी—बेगम साहबाके भाई मिलना चाहते है ।

नूर०—आसफ ?

दासी—हाँ ।

नूर०—कह दो, इस वक्त फुर्सत नहीं है ।—अच्छा, ले आओ।

(दासीका प्रस्थान ।)

नूर०—पिताके मरनेके बाद एक इशारेमें उनका मन्त्रीका पद आसफको दिला दिया है। क्षमताकी एक मधुरता यही है कि उसके एक कृपाकटाक्षके लिए मनुष्य मुहँ बाये रहता है। क्षमता लात मारकर जो अनुग्रह फेंक देती है, उसे अक्षमता व्यग्रताके साथ हाथ बढ़ाकर उठा लेती है। क्षमतामे मोह अवश्य है।

[आसफका प्रवेश ।]

नूर०—क्या है आसफ ?

आसफ—इंग्लैण्डके राजदूत रो साहबने फिर तुमसे अनुरोध कर भेजा है।

नूर०—सूरतमें कोठी बनानेकी अनुमतिके लिए ?

आसफ—हाँ।

नूर०—अच्छा, मैं इस बारेमें सम्राट्से आज ही कहूँगी। कल भूल गई थी। कहना—वे चिन्ता न करें, चिन्ताका कोई विशेष कारण नहीं है।

(आसफका प्रस्थान ।)

नूर०—(टहलते टहलते) लेकिन मैंने अभीतक अपनी क्षमताका यथोचित व्यवहार नहीं किया। अब बदलेकी तैयारी करनी होगी। जिसके लिए सब खोया है वही काम अब शुरू करना होगा।

[शाहजहाँका प्रवेश ।]

शाह०—सम्राज्ञी, पिताजी क्या यहाँ नहीं थे ?

नूर०—उनसे तुम्हारा क्या प्रयोजन है खुर्रम ?

शाह०—उन्होंने मुझे दक्खिन जानेकी आज्ञा दी है। इसी बारेमें उनसे मुझे कुछ कहना था।

नूर०—वे यहां अवश्य थे। अभी कहीं गये हैं।

शाह०—अच्छा, उन्हें खोजने जाता हूँ। (जाना चाहता है।)

नूर०—(सहसा) सुनो खुर्रम !

शाह०—(फिरकर) सम्राज्ञी !

नूर०—मैं जानती हूँ कि तुम सम्राट्की आज्ञासे दक्खिन जा रहे हो, वहाँके विद्रोहियोका दमन करने। सुनो, एक बार मै तुम्हें सावधान कर दूँ।

शाह०—किस बारेमें सम्राज्ञी !

नूर०—खुर्रम ! इस समय सम्राट्के प्रियपात्र तुम नहीं हो, शाहजादा खुसरू हैं।

शाह०—एक सन्तानकी अपेक्षा दूसरी सन्तान पर अगर पिताका स्नेह अधिक है तो उसमें आश्चर्य ही क्या है !

नूर०—तुम सम्राट्के चतुर सेनापति हो। तुम सम्राट्के दाहने हाथ हो। तुम दक्खिनके युद्धमें महारथी हो। लेकिन भारतके भावी सम्राट्—सम्राज्ञी रेवाके पुत्र शाहजादा खुसरू है !

शाह०—आपका यह गूढ इशारा मै समझ नहीं सका बेगम साहवा !

नूर०—यह बात क्या इतनी कठिन है ? तुम रहोगे दूर दक्खिनमें। हो सकता है कि वहाँ विद्रोहियोंको वश करनेमें दस बरस लग जायँ और तुमको वहीं रहना पड़े। इधर सम्राट्के पास रहेगे उनकी आँखोंके अंजन, हृदयरंजन, शाहजादा। खुसरू मेरे कोई नहीं है। तुम मेरे भाई आसफके दामाद हो, इसीसे यह बात तुमको जता दी।

शाह०—आप क्या करनेके लिए कहती हैं ?

नूर०—मैं कहती हूँ, खुसरूको सम्राट्के पाससे दूर हटाये रक्खो, जिससे पीछे भारतका सम्राट् कौन होगा, इसका निर्णय तुम लोगोंकी खुदकी शक्ति पर निर्भर हो। इसमे अन्याय कुछ नहीं है।

शाह०—खुसरू अपनी इच्छासे आप ही मेरे साथ जाना चाहता है !

नूर०—अच्छी बात है; साथ लेते जाओ।

शाह०—पर सम्राट् कैसे अनुमति देंगे ?

नूर०—इस बारेमें मैं सम्राट्से अनुरोध करूँगी।

शाह०—अच्छा तो जानेकी आज्ञा दीजिए। (प्रणाम करना।)

नूर०—याद रहेगा ?

शाह०—याद रहेगा। (प्रस्थान।)

नूर०—बाँदी !

[बाँदीका प्रवेश।]

नूर०—मै जरा फिर आसफसे मिलना चाहती हूँ।

(बाँदीका प्रस्थान।)

नूर०—इस खुर्रमको मैं प्यार नहीं करती, बल्कि कुछ कुछ डरती हूँ। यह कम बातचीत करता है। इधर उधर नहीं देखता। और मेरे ऊपर इसके हृदयमे एक प्रकारके दर्पका और अवज्ञाका भाव है। धीरे धीरे इसे भी मै इस दुनियासे खिसकाऊँगी। इस सारे परिवारको मै अग्निकुण्डमें डालूँगी।

[आसफका प्रवेश।]

नूर०—एक बात कहनेको भूल गई थी आसफ! बंदरराजको आज्ञा दो कि मै कल दिनको दोपहरके समय उससे मुलाकात करना चाहती हूँ।

आसफ—इस पाजी नीचसे तुम्हारा क्या मतलब है मेहर?—जो तुम्हारे स्वामीका हत्या करनेवाला—

नूर०—(रूखी हँसी हँसकर) उसीके अनुग्रहसे आज मुझे यह सम्मान प्राप्त है।

आसफ़——मगर——

नूर०——कुछ मत पूछो। उत्तर नहीं पाओगे!——जो कहूँ वह किये जाओ! स्त्री-चरित्र समझनेकी चेष्टा मत करो, समझ नहीं सकोगे! जाओ।

(आसफका प्रस्थान।)

नूर०——एक ही शक्तिके बलसे ग्रह और उपग्रह अपनी नियमित कक्षामें घूमते हैं, और धूमकेतु महाशून्यको भेद कर चला जाता है। एक ही शक्तिके बलसे मेघ मीठे जलकी धारा बरसाते है, और हाहाकार करता हुआ वज्र आकाशसे पृथ्वी पर फट पड़ता है। एक ही शक्तिके बलसे बर्फ गलकर नद और नदियोंका रूप धारण कर पृथ्वीको हरी भरी बनाता है और विराट् जलप्रपातकी भारी चोट पृथ्वीके वक्षःस्थलको विदीर्ण भी कर देती है! (प्रस्थान।)

तीसरा दृश्य।

स्थान——दक्षिणमें रावणीदुर्ग।

समय——रात।

[शाहजहाँ और बन्दरराज खुसरूके सोनेके कमरेमें बातचीत कर रहे है।]

शाह०——राजा, आप आ गये, अच्छा हुआ। मुझे आज इसी घड़ी एक युद्धमे जाना है। अभी यही सोच रहा था कि दादाको किसकी देख-रेखमे छोड़ जाऊँ। अब आपको ही सौंपकर उन्हे छोड़ जा सकता हूँ।

राजा——बेशक, बेशक! इसमें सन्देह ही क्या है!

शाह०——वे कल रातको पागलोंकी तरह बक रहे थे! कभी रोते थे; कभी सम्राट्को, मुझे और मेरी स्त्रीको बुरा–भला कहकर झिड़-

कियाँ दे रहे थे ! कभी भाग्यको व्यंग्य करके हँसते थे ।—इसी तरह उन्होंने रात बिताई है ।

राजा—तो वे पूरे तौरसे पागल है !

शाह०—पागल नहीं हैं। कभी कभी उनकी यह हालत हो ही जाती है । पहले भी हो जाती थी । ऐसी अवस्थामें वे साधारण—यहाँतक कि कल्पित कारणसे भी बहुत विचलित हो उठते हैं । दमभरमें औरतोंकी तरह रोने लगते है । इस समय मै आपके हाथमें उन्हें सौंपे जाता हूँ ।—आप देखिएगा ।

राजा—इस बारेमें कुछ चिन्ता न कीजिए शाहजादा साहब । मैं आपके यहाँका पुराना सेवक हूँ—बहुत ही अनुगत और आज्ञाकारी हूँ ।

शाह०—इसीसे आप पर विश्वास करके भाई खुसरूको छोड़े जाता हूँ।

राजा—कुछ चिन्ता नहीं है शाहजादा । युद्धसे लौट आकर देखिएगा कि आपकी चिन्ता करनेका कोई कारण नहीं रहा है ।

शाह०—अच्छी बात है । तो अब मै जाता हूँ राजासाहब ।

(प्रस्थान ।)

राजा—पहरेदार !

[पहरेदारका प्रवेश ।]

राजा—(पहरेदारसे) पहरेदार, किलेका फाटक बंद कर दो और मेरे आदमी करामतखाँको यहाँ भेज दो ।

(पहरेदार चुपचाप चला जाता है ।)

राजा—(टहल टहलकर) शाहजादा ! इतनी बुद्धि मुझमें है। एक ही निशानेमें दो चिड़ियाँ मारूँगा—इधर शाहजहाँको और उधर नूरजहाँको खुश करूँगा। नूरजहाँने तो अपना विचार मुँह खोलकर खुलासा कर दिया है, मगर खुसरू शाहजहाँके सगे भाई हैं, इस लिए वे अपना

मतलब खुलासा मुँह खोलकर नहीं कह सकते। लेकिन मै इशारा भी खूब समझ सकता हूँ। जहाँगीरका इशारा ठीक समझा था। शाहजहाँका इशारा नहीं समझ सकूँगा!—शेरखाँको मारकर मैं राजाबहादुर हुआ हूँ, अबकी खुसरूको मारकर—एकदम महाराज हो जाऊँगा। ओः! —कैसे सीढ़ी सीढ़ी करके ऊपर चढ़ रहा हूँ!—एक एक हत्या, और एक एक सीढ़ी चढ़ना!

[खुसरूका प्रवेश।]

खुसरू—तुम कौन?

राजा—मैं हूँ बन्दरका राजा।

खुसरू—यहाँ क्यो आये हो?

राजा—शाहजादा शाहजहाँ आपकी रक्षा और देखरेखके लिए मुझे यहाँ छोड़ गये है।

खुसरू—छोड़ गये है! वे कहाँ गये?

राजा—युद्ध करने।

खुसरू—गये?

राजा—हाँ शाहजादा साहब।

खुसरू—तुमको पहरेदार बनाकर छोड़ गये है शायद?

राजा—हां शाहजादा साहब।

खुसरू—किलेका फाटक क्यो बंद है राजा?

राजा—युवराज शाहजहाँकी आज्ञासे। शाहजादाको इस किलेके बाहर जानेकी अनुमति नहीं है।

खुसरू—यह क्या? तो मैं खुर्रमका कैदी हूँ?

राजा—कैदी नहीं है शाहजादा।

खुसरू—कैदी नहीं हूँ कैसे ?—मुझे किलेके बाहर जानेकी अनुमति नहीं है । कैदी होनेमें और बाकी क्या है ?

राजा—शाहजादासाहब—

खुसरू—मै कुछ सुनना नहीं चाहता । खुर्रमको बुलाओ !—नहीं, वह तो चला गया !—दरवाजा नहीं खोलोगे राजा ?

राजा—अपने मालिककी आज्ञा बिना—

खुसरू—तुम्हारा मालिक खुर्रम है ?—ओ—सो अच्छी बात है ! अच्छा जाओ ।

राजा—जो आज्ञा । मै बाहर पहरे पर हूँ, आप निश्चिन्त होकर सोइए । शाहजादा—

खुसरू—पहरे पर हो । मैं क्या सिड़ी या पागल कुत्ता हूँ कि मुझे पहरेमे रखना होगा ?

राजा—शाहजादा, मेरा एक निवेदन है ।

खुसरू—जाओ मेरे सामने कुत्तेकी तरह दुम न हिलाओ ! चले जाओ । दूर होओ ।　　　　　(राजाका प्रस्थान ।)

खुसरू—मैंने स्वप्नमें भी नहीं सोचा था कि यह दुर्दशा होगी । अपने छोटे भाईके हाथ बन्दी ! जिस भाईको मै इतना प्यार करता हूँ ! इससे तो मौत अच्छी थी !—अगर एक बार पिताको यह जतानेका उपाय होता ! (द्वारके पास आकर किवाड़े ठेलकर) यह क्या ! कमरेका दरवाजा भी बाहरसे बंद है ! पहरेदार ! नहीं उसे पुकारनेसे क्या होगा । उसने निश्चय ही बिना आज्ञाके द्वार नहीं बंद किया ।—ओः कैसी दुर्दशा है ! ओ हो हो हो हो । (सिरपर हाथ रखकर बैठ जाना ।) रात अधिक बीत गई है, सोऊँ (लेटना)—नहीं नींद न आवेगी । खुर्रम ! कैसे निठुर तुम हो ! अपना भाई भी इतना निठुर

होता है ! और मुझसे यह निठुराई, जो अपनी इच्छासे तुम्हारे साथ आया ! मैं तुम्हें इतना प्यार करता हूँ कि तुम्हारे लिए अनायास अग्नि-कुण्डमें फाँद सकता हूँ !—ओ हो हो हो ! कैसे निठुर हो ! कैसे निठुर हो ! (रोना ।)

(इस समय खुसरूके पीछेसे दो हत्यारोंके साथ राजाका प्रवेश और इशारा करना । हत्यारे खुसरूकी पीठमें छुरा मारते हैं । खुसरू चित होकर गिर पड़ता है । हत्यारे छातीमें छुरा भोंक देते है । खुसरू धरती पर गिरकर आर्तनाद करता है ।)

खुसरू—(राजाकी ओर देखकर) इसी लिए मुझे कैद कर रक्खा था खुर्रम ! अब समझा ।—ओः—

राजा—बस ! काम तमाम हो गया ! तुम जाओ ।

(हत्यारोंका प्रस्थान ।)

खुसरू—तुम्हारा काम भी पूरा हो गया !—तुम भी जाओ—

(राजाका प्रस्थान ।)

खुसरू—खुर्रम ! तुम सम्राट् होना चाहते हो । लेकिन मेरा खून किये बिना भी तुम सम्राट् हो सकते थे ! खुर्रम तुम्हारे इस ममताहीन क्रूर व्यवहारसे मुझे ऐसा कष्ट हुआ है कि मृत्युकी यन्त्रणा उसके आगे कुछ नही है ।—ओ हो हो हो ! !—पिता-पिता !—(मृत्यु ।)

चौथा दृश्य ।

स्थान—नूरजहाँका कमरा ।

समय—रात ।

[जहाँगीर, नूरजहाँ और आसफ बातें कर रहे हैं । जहाँगीरकी आँखें लाल हैं और वे आसफकी तरफ देख रहे हैं ।]

आसफ—यह काम शाहजहाँका नहीं है । मै शाहजहाँको जानता हूँ । वे भाईकी हत्या कभी नहीं कर सकते । ऐसा होना असंभव है ।

जहाँ०—यह हत्या शाहजहाँने ही की है, इस बारेमें मुझे कुछ भी सन्देह नहीं है। शाहजहाँकी सम्मतिके बिना राजाकी क्या मजाल कि वह मेरे पुत्रकी हत्या करे?

आसफ—जहाँपनाह! राजाको दक्खिनमें शाहजहाँने नहीं बुलाया।

नूर०—आसफ! तुम अपने दामादको बचानेकी चेष्टा कर रहे हो, इसमें कुछ आश्चर्यकी बात नहीं है। शाहजहाँ तुम्हारे दामाद है, शाहजहाँ जहाँपनाहके भी पुत्र हैं। लेकिन जहाँपनाह न्याय-विचारके समय अपने पुत्रका भी पक्षपात नहीं करते, यह जगत्प्रसिद्ध बात है।

जहाँ०—निश्चय ही। मै न्याय-विचार करूँगा।

आसफ—खुदावन्द—

जहाँ०—मै और कुछ सुनना नहीं चाहता आसफ। मै इसी घड़ी शाहजहाँको पत्र लिखता हूँ। मै इसकी कैफियत चाहता हूँ। मै अन्त तक इसकी जाँच करूँगा; और शाहजहाँको उचित दण्ड दूँगा।—अभागा खुसरू! अभागा! आज ही रातको ५०० सवारोंके द्वारा शाहजहाँके पास डाक रवाना करो आसफ! मै इसी घड़ी पत्र लिखता हूँ। (प्रस्थान।)

आसफ—मेहर! यह तुम्हारी सलाह है।

नूर०—आसफ! तुम मेरे भाई जरूर हो, लेकिन जब राजकाजके सम्बन्धमें बातचीत करो तब याद रक्खो कि मैं सम्राज्ञी हूँ और तुम मन्त्री हो। यह भी याद रक्खो कि पिताके मरनेके बाद यह मन्त्रीका पद मैंने ही तुमको दिलाया है।

आसफ—मेरा मंत्री-पद! वह तो तुम्हारे स्वेच्छाचारका एक पर्दा भर है! हाय किस बुरी घड़ीमे मैंने तुमसे सम्राज्ञी बननेके लिए कहा था!

नूर०—क्यों कहा था ? उस दिन मैंने कहा नहीं था कि "साव-धान !" तुमने नहीं सुना। तुमने बाँध तोड़ दिया है ! इस समय भीतर रुके हुए जलके जोरको, हो सके तो, रोक रक्खो। मुझमें तो अब वह शक्ति नहीं है।—जाओ !

(आसफका प्रस्थान ।)

नूर०—आग जला दी है ! अब वह जले ! खुसरू एक—समाप्त हो गया। शाहजहाँ दो—अब शुरू हुआ है। उसके बाद परवेज तीन—अभी उधर हाथ नहीं लगाया। उसके बाद यह साम्राज्य नूर-जहाँ और उसकी बेटी लैलाका है।—साम्राज्ञी रेवा तुम नक्षत्र हो सकती हो, पर अब मुझे यह देखना है कि कलंकी चन्द्रमाकी किर-णोंके सामने तुम फीकी पड़ जाती हो या नहीं। मैंने जब अपनेको बेचा है तब अपना उचित मूल्य वसूल किये बिना न छोड़ूँगी। इसीके लिए मैंने सब खोया है। इसीके लिए मैं धर्मके पवित्र और उज्ज्वल राज्यसे नीचे उतर आई हूँ। मै कोई बाधा न मानूँगी।

[रेवाका प्रवेश ।]

रेवा—सम्राज्ञी नूरजहाँ !

नूर०—कौन ! सम्राज्ञी रेवा ! (भयके साथ स्वगत) यह क्या ! यह कैसी मूर्ति है !

रेवा—सम्राज्ञी नूरजहाँ ! तुमने मेरे पुत्रकी हत्या कराई है ?

नूर०—मैंने

रेवा०—मैं तुमसे झगड़ा करने नहीं आई हूँ नूरजहाँ, तुम्हें झिड़की देने या भला-बुरा कहने भी नहीं आई हूँ। उससे मुझे कुछ लाभ नहीं। उससे अपने पुत्रको अब मै नही पासकती। हाँ केवल पूछने आई हूँ। तुमने मेरे पुत्र खुसरूकी हत्या कराई है ?

नूर०—आपसे यह किसने कहा ?

रेवा—मेरे अन्तरात्माने ! तो भी मै निश्चिन्त होना चाहती हूँ। बोलो। सम्राट्को डरती हो ? मै कसम खाती हूँ, सम्राट्से इस बारेमें मै एक अक्षर भी नहीं कहूँगी।—तुमने खुसरूकी हत्या कराई है ?

नूर०—अगर कराई ही हो—

रेवा—(दमभर चुप रहकर नूरजहाँकी ओर ताककर) सम्राज्ञी नूर-जहाँ ! तो तुमने महापातक किया है ! तुम नही जानती कि यह कैसा महापातक है। इसके सिवा पुत्र क्या चीज है, सो भी तुम नहीं जानतीं। (काँपते हुए स्वरमें) पुत्र जिसका नष्ट हो गया है उस माताकी वेदना तुम नही समझ सकती !

नूर०—बेगम साहबा अगर—

रेवा—तर्क मत करो ! प्रतिवाद मत करो ! पश्चात्ताप करो !—मैने अपना स्वामी, अपना साम्राज्य, अपना सब कुछ तुम्हें दे दिया था; केवल पुत्रको रख छोड़ा था। वह भी तुमने छीन लिया ! मेरा अब और कोई नहीं है। कोई नहीं है ! ओः—(दोनो हाथोंसे मुँह ढक लेती है।)

[लैलाका प्रवेश।]

लैला—अम्मी !

नूर०—क्या लैला ?

लैला—सच है ?

नूर०—क्या सच है ?

लैला—तुमने शाहजादा खुसरूकी—इनके पुत्रकी हत्या कराई है ? यह सच है ?

नूर०—हाँ सच है।

लैला—(आँखें फाड़कर) नूरजहाँ बेगम! यह भी संभव है? सम्राज्ञी रेवाके इकलौते बेटेको तुमने मरवा डाला? जिस रेवाने तुम्हें साम्राज्य दान कर दिया—हाँ दान ही कर दिया—राजा जैसे भिक्षुकको भिक्षा देता है—उसी तरह तुमको यह साम्राज्य जिन्होने दे डाला—उन्हीं रेवाके इकलौते बेटेको—ओः! मा, तुम नहीं जानतीं कि क्या कर रही हो!

नूर०—बदला लिया है।

लैला—बदला!—यही बदला है! इस अभागिनके इकलौते पुत्रकी हत्या करवा कर बदला!—इनकी ओर जरा आँख उठाकर देखो कल ये जवान थी! और आज देखो, इनके सब बाल पक गये है, मस्तक पर गहरी रेखाये देख पड़ने लगी है, दोनों आँखोंके नीचे गहरी स्याही छा गई है! मा!—शैतानी—क्या किया—

(लैलाका स्वर कॉपने लगा।)

नूर०—तुमने ही तो लैला, मुझसे शैतानी बननेके लिए कहा था।

लैला—हाँ कहा था। लेकिन तब मै क्रोधके मारे अपने आपेसे बाहर हो रही थी। मेरी उस कमजोरीका मौका पाकर तुमने शहरयारके साथ मेरा ब्याह कर दिया। लेकिन अन्तको—ना, मै इस बातको सोच नहीं सकी थी! (रेवासे) अभागिन मा मेरी! यह मेरा काम नहीं है। ईश्वर जानें, मै ऐसी कल्पना भी नहीं कर सकी थी! (नूरजहाँसे) मा तुम क्या थीं! क्या हो गईं!

नूर०—लैला—

लैला—नहीं मा, अब नहीं। तुम्हारे साथ मेल किया था, लेकिन अब नहीं। आजसे मेरी राह अलग, तुम्हारी राह अलग। तुम अके-

ले ही इस परिवारको मिट्टीमें मिला सकती हो। दो होनेसे प्रलय हो जायगा। (प्रस्थान।)

नूर०—सम्राज्ञी— (इतना कहकर सिर झुका लेती है।)

रेवा०—समझ गई नूरजहाँ। तुम्हें पछतावा आ रहा है। ईश्वर तुम्हें क्षमा करेंगे! तुम जानती नहीं।—तुम समझ नहीं सकीं। मैं तुम्हारे लिए भगवान्‌के निकट प्रार्थना करूँगी। और अपने लिए!—ओः मेरा हृदय फट गया! टूट गया! अब दबाकर रख नही सकती!—ईश्वर! मैंने एक दिन कहा था—'माताको इतना सुख है!' आज तुमने दिखा दिया—माताको इतना दुःख है! कैसा कठिन यह दुःख है! दुःखकी सीमा शायद अकेले तुम्ही हो जगदीश! (प्रस्थान।)

(रेवाके चले जाने पर नूरजहाँ कुछ देर चुप रहती है।)

नूर०—(धीरे धीरे धीमे स्वरमें) नूरजहाँ! इस हिन्दूललनाके आगे सिर नीचा कर लिया! पर्वतके शिखर परसे एक दम उसके पैरों पर गिर पड़ी! यह क्षमा-भिक्षा चुपचाप सिर झुकाये हाथ फैला कर ले ली। कहाँ गया वह दर्प तेरा! नूरजहाँ, युद्धयात्राके मारू बाजेके तालके साथ चलते चलते एकाएक सन्नाटेमे आकर खड़ी हो गई! तुझे क्या हो गया! करेगी? और भी आगे बढेगी? या पीछे फिरेगी?—सोच ले।

पाँचवाँ दृश्य।

स्थान—दक्षिणमे जयन्ती दुर्ग।

समय—प्रातःकाल।

[शाहजहाँ और उनके सेनापति अमीरअली खड़े खड़े बातचीत कर रहे है।]

शाह०—अमीरअली! बदरका राजा लाहौरको लौट गया?

अमीर०—हाँ जनाब।

शाह०—यह हत्या निश्चय सम्राज्ञी नूरजहाँकी आज्ञासे हुई है।

अमीर०—सम्राज्ञीकी ?

शाह०—हाँ सम्राज्ञीकी। अब सब समझमे आ रहा है। मै देखता हूँ, वह औरत हम सबको एक एक करके हटाना चाहती है। उसका पहला शिकार हुआ बदनसीब खुसरू। उसके बाद मेरी बारी है।

अमीर०—उसक बाद आप शाहजादा ?

शाह०—निश्चय ही। नहीं तो वह औरत—खुसरूकी हत्याके लिए मुझे अपराधी ठहराकर मुझसे कैफियत न माँग भेजती।

अमीर०—यह कैफियत खुद सम्राट् जहाँगीरने माँग भेजी है न ?

शाह०—जहाँगीर अब नामको ही बादशाह है। बादशाहत नूर-जहाँ कर रही है। मै उस औरतकी आज्ञा नही मानता। मै कैफियत नहीं दूँगा।

अमीर०—लेकिन—

शाह०—इसमे 'लेकिन' कुछ भी नहीं। इसके लिए विद्रोह करना पड़े तो वह भी करूँगा।

अमीर०—शाहजादा साहब, आज्ञा हो तो एक निवेदन करूँ।

शाह०—कुछ भी नहीं। अमीरअली ! मै इस स्त्रीकी प्रभुता नहीं स्वीकार करूँगा। कैफियत नहीं दूँगा। और पिताने जब साम्राज्य नूरजहाँके हाथमे ही सौप दिया है, तब सम्राट् शाहजहाँ है—नूरजहाँ नहीं। मै कैफियत नहीं दूँगा। जाओ मै अभी पत्र लिखे देता हूँ। अमीरअली ! सम्राट्के पास पत्र लेजानेके लिए तैयार हो जाओ।

(अमीरअलीका प्रस्थान ।)—आप हत्या करके मेरे सिर भाईकी हत्याकी महा पातक लादना ! कैसा असहनीय साहस है ! पिता तो इस मक्कार औरतके जालमें फँस गये हैं; उनका अब निस्तार नहीं । लेकिन मैं उन्हें इसके जालसे निकालूँगा—उनकी रक्षा करूँगा ।

[खादिजाका प्रवेश ।]

शाह०—खादिजा ! मैने विद्रोह किया है । अब मै भारतका सम्राट् हूँ ।

खादिजा—यह क्या नाथ ! विद्रोह ?

शाह०—हाँ विद्रोह ! अब मैं सम्राट्से युद्ध करूँगा ।

खादिजा—नाथ ! साम्राज्यके लिए पितासे युद्ध करोगे ?

शाह०—पिताके साथ नहीं खादिजा—नूरजहाँके साथ । जरा ठहरो, मै पत्र लिखकर दे जाऊँ । ऐसी मजाल !　　　　(प्रस्थान ।)

खादिजा—साम्राज्य !—बाहरकी सम्पत्तिके लिए मनुष्य यों लायँ-लायँ करता है । वह नहीं देखता कि हरएक मनुष्यके हृदयके भीतर बहुत सी अतुल सम्पत्तियाँ अनादरके भावसे पड़ी हुई है। बाहर सुखकी इतनी तैयारी है। भीतर सुखका समुद्र भरा है—उधर ध्यान ही नहीं है ! सुख अपने हाथके पास ही है, इतना निकट और इतना सहज है, तो भी सारे संसारके मनुष्य अन्धोकी तरह उसे टटोलते फिरते है ! सिर्फ प्रेम करके !—केवल प्यार करके !—मनुष्य सुखी हो सकता है—　　　　(प्रस्थान ।)

छठा दृश्य।

स्थान—महलका अंतःपुर।

समय—सन्ध्याकाल।

[लैला गा रही है।]

गीत।

सोहनी।

सेल सी लगी है कैसी मोरे रे हियरवा।
जानत सो तो बस मेरो ही जियरवा ॥ सेल० ॥
कठिन यन्त्रणा यह को समझै, कैसी लोक-हँसाई।
जाके लगी सोई समझै, को जानत पीर पराई ॥ सेल० ॥
वह विष व्याप्यो नस नस कैसे निस-दिन दहत सदा ही।
कैसो अन्धकार हिय मेरे घेरे रहत सदा ही ॥ सेल० ॥
एक किरणमय भुवन बीच हौं छाय रही जनु छाया।
नील गगन महँ बही फिरौं ज्यों काले घनकी काया ॥सेल०॥
चहुँ दिसि हँसी लसी, तिहि बिच बस मैं ही एक अभागी-
हाहाकार-सदृश हौं सूना, सारे जगकी त्यागी ॥ सेल० ॥
मधुर गानकी तान जगतमहँ, गूँजि रही मनभाई।
तान बेसुरी तिहिमहँ मैं ही, उपज अनोखी पाई ॥ सेल० ॥

[शहरयारका प्रवेश।]

शहर०—लैला युद्धकी कुछ खबर सुनी है ?

लैला—(अविचलित भावसे) किस युद्धकी ?

शहर०—भाई शाहजहाँके विद्रोहवाले युद्धकी।

लैला—नहीं, उसकी खबर मैंने नहीं सुनी।

शहर०—भाई शाहजहाँने दिल्लीको घेर लिया था। सेनापति महाबतखाँसे हारकर वे फिर दक्खिनको भाग गये हैं।

लैला—बेचारे शाहजहाँ ! तुम भी कूटचक्रमें पड़े हुए हो ! तुम भी मारे गये ! उसके बाद परवेजकी और उसके बाद शायद तुम्हारी बारी आवेगी ।

शहर०—क्या कह रही हो लैला !

लैला—नही, तुम्हे नहीं मारेंगे ।—तुम बेचारे बिलकुल गऊ हो । उन लोगोकी समझमे तुम्हारे प्राणोकी अपेक्षा बारूदका मूल्य अधिक है ।

शहर०—मुझे कौन मारेगा ?—मुझे क्या कोई मारना चाहता है ?

लैला—यही बात सोच रही थी ।

शहर०—नहीं, मै मरना नही चाहता लैला । मुझे इस पृथ्वीसे बड़ा ही प्रेम है । ऐसा आकाश, ऐसी हवा, ऐसी सूर्यकी किरणे, ऐसी चाँदनी—फूलोकी महक, पक्षियोका संगीत, नदीकी लहरें, पहाड़ोकी ऊचाई—मुझे इस पृथ्वीसे बड़ा ही प्रेम है ।

लैला—(गहरी अनुकंपाके भावसे)बेचारे मेरे स्वामी ! नहीं शाहजादे, तुम्हे वे मारना नही चाहते । तुम्हे मारनेसे क्या होगा ?

शहर०—अगर मारना चाहे तो तुम मुझे बचा लोगी ?

लैला—मै अपने हृदयमे छिपाकर तुम्हारी रक्षा करूंगी। तुम्हे कुछ डर नही है शहरयार ।

[दासीका प्रवेश ।]

लैला—क्या है बाँदी ?

दासी—सम्राट् कहाँ है शाहजादी ?

लैला—क्यो ?

दासी—उन्हे खबर देने जा रही हूँ । सम्राज्ञी रेवाका स्वर्गवास हो गया ।

लैला—सम्राज्ञी रेवाका ?

दासी—हाँ जनाब।

लैला—सो तो मैं पहले ही जानती थी। सम्राट् यहाँ नहीं आये बाँदी।

(दासीका जल्दीसे प्रस्थान।)

लैला—अभागिनी पुत्रशोकसे मरीहुई सम्राज्ञी! पृथ्वी परसे एक गौरव चला गया!—एक प्रकाश, एक सुन्दर संगीत, एक प्रार्थना—

(धीरे धीरे प्रस्थान।)

शहर०—ना, मुझे वे नहीं मारेंगे।

[परवेजका प्रवेश।]

परवेज—शहरयार!

शहर०—कौन? भाई परवेज?

पर०—हाँ।

शहर०—तुम युद्धसे कब लौट आये?

पर०—आज ही आया हूँ।

शहर०—युद्धकी खबर क्या है? शाहजहाँ कहाँ है?

पर०—वहरमपूरके युद्धमे हारकर वे मेवारकी तरफ गये है।

शहर०—मेवार?—क्यों?

पर०—जान पड़ता है, मेवारके राणासे आश्रय माँगने। वे पिताके कठोर न्याय-विचारका हाल जानते है। इसके सिवा उन पर यह दारुण अभियोग है कि उन्होंने ही खुसरूकी हत्या कराई है। इसीसे उन्होंने पिताकी अधीनता स्वीकार करनेकी अपेक्षा राणाकी शरणमे जाना ही पसंद किया।

शहर०—तुम जानते हो भाई कि यह अभियोग बिलकुल मिथ्या है? भाई खुसरूकी मौतके लिए शाहजहाँ दोपी नहीं है।

पर०— तो फिर कौन दोषी है?

शहर०—सुनोगे, कौन दोषी है भाई ? (चारों ओर देखकर धीरेसे) दोषी हैं सम्राज्ञी नूरजहाँ ।

पर०—यह कैसे ? तुमने किस तरह जाना ?

शहर०—अच्छा तो सुनो भाई। एक दिन मेरी स्त्री तेजीके साथ उन्मत्त भावसे आँधीकी तरह मेरे कमरेमें घुस आई। उसकी आँखें लाल थीं। उसने आते ही रूखे स्वरमें कहा—"कसम खाओ कि मैं कभी सम्राट् नहीं होऊँगा।" मै बीमारीकी हालतमें पलँग पर पड़ा हुआ था। उसने मेरा हाथ जोरसे पकड़कर कहा—"कसम खाओ, कसम खाओ, कसम खाओ!" धीरे धीरे उसका स्वर ऊँचेसे भी ऊँचा होने लगा। अन्तको वह स्वर मानों एक हाहाकारके समान सुन पड़ा। उसका सारा शरीर थरथराने लगा। मुझे डर मालूम हुआ। मैंने कसम खा॰ कि कभी सम्राट् न होऊँगा। तब वह मेरी छाती पर सिर रखकर मे॰॰ लगी। फिर शान्त होनेपर उसने इस हत्याका इतिहास कहा।

पर०—उन्होने जाना किस तरह ?

शहर०—उसकी माने अपना यह दोप स्वीकार कर लिया है।

पर०—स्वीकार कर लिया है! किसके आगे ?

शहर०—सम्राज्ञी रेवाके आगे, उसके बाद मेरी स्त्री लैलाके आगे।

पर०—इतना बड़ा कुचक्र!

शहर०—भाई! सम्राज्ञीने मुझे भी अपने कुचक्रके बीच खींचा है; इसीसे मैं बहुत डर रहा हूँ।

पर०—तुम्हारा अपराध क्या है ? जाओ, तुम जाकर सोओ। ठंडकमें मत ठहरो। (प्रस्थान।)

शहर०—ओः मेरा सिर घूम रहा है—(प्रस्थान।)

सातवाँ दृश्य।

स्थान—उदयपुर।

समय—प्रातःकाल।

[राणा कर्णसिंह और उनके सामन्त खड़े है। सामने शाहजहाँ खड़े हैं।]

शाह०—राना सा०, मैंने दक्खिनसे आकर पहले दिल्ली पर चढ़ाई की ! वहाँ महाबतखाँसे हारकर मैं दक्खिन भाग गया। इसके बाद नर्मदाके युद्धमें फिर महाबतखाँसे हारा और वहाँसे बंगालकी ओर भागकर मैंने उस देशको जीता।

कर्ण०—भागते भागते ?

शाह०—हाँ राणा ! वहाँसे भगाया जाकर मै मानिकपुरको गया। वहाँसे हारकर फिर दक्खिनको गया। वहाँ भी पीछा करके महाबत-खाँने मुझे भागनेके लिए लाचार किया। फिर मै बंगालको भागा। फिर रोहितासगढ़मे परिवारको रखकर और अपनी सारा सेना लेकर मैंने बहरमपुरपर चढ़ाई की। महाबतखाँने वहाँ भी मुझे हराया।

कर्ण०—शाहजादा, तुम्हारी क्षमता भी अद्भुत है।

शाह०—बल्कि यह कहिए राणा कि महाबतखाँका युद्धकौशल अद्भुत है।

कर्ण०—उसी महाबतखाँके विरुद्ध आपने इतने दिन तक युद्ध किया यही अद्भुत है।

शाह०—इसका कारण यही है कि मैंने सामने आकर बहुत कम युद्ध किया है। नर्मदा युद्धकी हारके बाद मैंने जंगली युद्ध करना शुरू कर दिया। उसमे भी हारकर अन्तको फिर सामनेसे युद्ध किया। किन्तु इस आखरी मर्त्तबा मैंने अपना सब कुछ गँवा दिया। इसीसे आज निरुपाय होकर मै मेवारके राणासे आश्रय माँगने आया हूँ।

कर्ण०—उदारहृदय शाहजहाँको मेवार अपना अन्तिम रक्तबिन्दु देकर बचावेगा ।—तुम्हारी क्या राय है सामन्तो ?

सामन्तगण—राणाकी जो राय है वही हमारी भी राय है ।

कर्ण०—देशके लिए प्राण देना महत्कार्य है, लेकिन धर्मके लिए प्राण देनेसे बढकर महत्कार्य और कुछ नहीं है ।—आश्रितको प्राण देकर भी बचाना क्षत्रियका धर्म है !—क्या कहते हो सामन्तो ?

सामन्त०—अवश्य ।

कर्ण०—शाहजादा शाहजहाँ, आप निश्चिन्त रहिए । मेवार अपना सर्वस्व देकर भी आपकी रक्षा करेगा । शाहजादा, मेवार आज वह मेवार नहीं है । आज मेवारका सर्वस्व नष्ट हो चुका है, उसकी शक्ति भी क्षीण हो चुकी है । मेवार आज दुर्दिनकी दुर्दशामें पड़ा है ! मगर दुर्दिनमें भी मेवार—मेवार है ! जबतक मेवारमे एक भी राजपूत रहेगा, तब तक आप अपनेको निर्भय समझिए ।

शाह०—अगर सम्राज्ञी नूरजहाँकी सेना मेवार पर चढ़ाई करे ?

कर्ण०—शाहजादा, मै कह चुका हूँ कि मेवार अपना अन्तिम रक्तबिन्दु तक देकर आश्रितकी रक्षा करेगा ।—भाई भीमसिह ! मेवारमें जितने योद्धा है, उन्हें तैयार होनेकी आज्ञा दे रक्खो । शाहजादेके लिए सम्राट्से युद्ध करनेको तैयार हो रहो । सेना सज्जित करो ।

आठवाँ दृश्य ।

स्थान—नूरजहाँका दरबार ।

समय—प्रातःकाल ।

नूर०—कैसा विश्वासघात है ! हारे हुए, मुगलोंको कर देनेवाले मेवारके राणा कर्णसिंह हमारे विरुद्ध होकर—विद्रोही शाहजहाँका पक्ष लेकर—लड़े ?

महावत०—वे कहते हैं कि आश्रितकी रक्षासे मुँह मोड़ लेना क्षत्रियका धर्म नहीं है।

जहाँ०—महाबतखाँ! तुम्हारी शूरता पर हम मोहित है। तुमने राणाकी सेनासे इस काशीके युद्धमे लड़कर और शाहजहाँको हराकर मेरे सिहासनकी रक्षा की है। तुमने मेरा गया हुआ पुत्र लौटा दिया है।

(महाबतखाँ कुछ सिर झुकाकर यह साधुवाद ग्रहण करते है।)

नूर०—तुमको हम धन्यवाद देते है सेनापति।

(महाबत फिर पहलेकी तरह सिर झुकाता है।)

जहाँ०—जाओ महाबतखाँ। शाहजादा शाहजहाँको सम्मानके साथ यहाँ ले आओ। हम आज—मन्त्री, उमराव, सेनापति आदिके सामने उसकी अभ्यर्थना करना चाहते है।

(महाबतखाँका जाना।)

नूर०—सम्राट्! शाहजहाँकी सादर अभ्यर्थना करना ही उचित है। मगर एकदम विना विचार किये उन्हे छोड़ देना भी असंगत होगा। वे चाहे जो हो, विद्रोही है।

जहाँ०—मैंने उसे क्षमा कर दिया है। अब विचारके लिए स्थान नहीं है।

नूर०—सारा भारतवर्ष जानता है कि न्याय-विचारके समय सम्राट् पुत्र-कन्याका खयाल नहीं रखते। उनका न्याय-विचार विधाताके विधानकी तरह तीक्ष्ण, ममताहीन और सरल है।

जहाँ०—न्याय-विचार! वह समय गया नूरजहाँ। अब मैं सम्राट् नहीं हूँ। मुझमें जो सम्राट् था वह स्नेहकी बहियाके वेगमें बह गया। मुझमें अब जो बाकी है—वह पिता है। न्याय-विचार नूरजहाँ! यदि उसे करने जाता तो मै भी न बच सकता—और तुम भी नहीं!

नूर०—तब भी जबतक आप सम्राट् हैं तबतक कमसे कम न्याय-विचारके एक अभिनयकी ही सही, जरूरत है। उसके बाद आप चाहें तो शाहजहाँको छुटकारा दे सकते हैं। जहाँपनाहके न्याय-विचारके ऊपर प्रजाका अगाध विश्वास है। उसे इस समय इस तरह विचलित होने देना उचित नहीं। एक वार खुलासा विचार होना चाहिए। फिर छोड़ दीजिएगा, कुछ हर्ज नहीं।

जहाँ०—अच्छी बात है। ऐसा ही हो। इसमे मुझे कुछ आपत्ति नहीं है।

नूर०—और मै खुद उस न्याय-विचारके करनेकी अनुमति चाहती हूँ; सिर्फ अपनी मर्यादाकी रक्षाके लिए। शाहजहाँने अपने पत्रमें सम्राट्के निकट मुझे दोषी ठहराया है—मेरा अपमान किया है, इस लिए अपनी मर्यादाकी रक्षाके लिए शाहजहाँको छोड़नेका सम्मान सम्राट् मुझे दें।

जहाँ०—अच्छी बात है नूरजहाँ! लेकिन मैं मौजूद रहूँगा!

नूर०—(मुसकराकर) देखती हूँ; नूरजहाँके ऊपर सम्राट्को पूरा विश्वास नहीं है। अच्छा, ऐसा ही हो।

जहाँ०—वह शाहजहाँ आ गया!

[मन्त्री, उमराव, सेनापतिगण, महाबतखाँ आदिके साथ शहाजहाँ दरबारमे प्रवेश करता है। शाहजहाँ सम्राट्को प्रणाम करता है। सम्राट् सिंहासनसे उठते हैं। नूरजहाँ उनकी ओर कठोर दृष्टिसे देखती है और वे फिर सिंहासन पर बैठ जाते हैं।]

जहाँ०—शाहजहाँ! इस राजधानीमें हम तुम्हारा स्वागत करते हैं।

शाह०—(सम्राट्की ओर देखकर) सम्राट्का अनुग्रह!

नूर०—तब भी तुम अपराधी हो; पहले तुम्हारा विचार होगा।

शाह०—मेरा विचार!

नूर०—हाँ तुम्हारा विचार। तुम्हारे विरुद्ध क्या अभियोग है, सो शायद तुम जानते होगे शाहजहाँ।

शाह०—नहीं। (विस्मयके साथ प्रश्नमयी दृष्टिसे जहाँगीरकी तरफ देखता है।)

नूर०—तो सुनो। तुम्हारे विरुद्ध पहला अभियोग यह है कि तुमने बंदरके राजाके द्वारा अपने भाई खुसरूका खून कराया है। यदि इस बातको तुम अस्वीकार करो तो साक्षीके तौर पर मैं राजाको यहाँ बुला सकती हूँ। दूसरा अभियोग यह है कि तुमने अपने पिताके विरुद्ध विद्रोह किया है। जान पड़ता है, इसे तुम अस्वीकार नहीं करोगे। तीसरा अभियोग यह है कि तुमने अपनी डाकुओंकी सेना लेकर सारे भारतवर्षमें हलचल मचा रक्खी है। इन बातोंकी कैफियत चाहिए।

शाह०—सम्राट्, कैफियत मैंने आपको पत्रमे लिख भेजी थी। यहाँ उसके फिर दोहरानेकी जरूरत नहीं जान पड़ती।

नूर०—नहीं, जरूरत है।

शाह०—सम्राट्!—

जहाँ०—शाहजहाँ! तुमने पत्रमे जो कैफियत लिख भेजी थी उसे इस आमदरबारमें तुम्हें दोहरा देना उचित है।

(शाहजहाँ पलभर सम्राट्की ओर ताकता रहता है। सम्राट् सिर झुका लेते हैं।)

शाह०—(धीरेसे) पहले मैं यह जानना चाहता हूँ कि मुझे कैफियत किसके आगे देनी होगी। भारतका शासक इस समय कौन है?— सम्राट् अकबरके पुत्र जहाँगीर, या शेरखाँकी विधवा नूरजहाँ?

नूर०—शाहजहाँ! तुम अपराधी हो। हाथ जोड़कर खड़े होना ही तुम्हें सोहता है, व्यंग करना नहीं सोहता।

शाह०—मैं इस औरतसे जबान लड़ाना नहीं चाहता। (जहाँगीरसे) मै जानना चाहता हूँ कि पिताजी क्या सचमुच ही मुझसे कैफ़ियत चाहते है ?

जहाँ०—हाँ चाहता हूँ ।

शाह०—(दमभर चुप रहकर) तो क्या मेरे अपराध क्षमा करके मुझे यहाँ बुला भेजना, मुझे कैद करनेके लिए एक भारी षड्यन्त्र ही था ?

नूर०—तुम किससे बात कर रहे हो, जानते हो शाहजहाँ ?

शाह०—जानता हूँ नूरजहाँ ! बात कर रहा हूँ अपने पिताके साथ ।—पिता, मैने विद्रोह किया है । किन्तु सामने लड़कर ही किया है—धोखा देकर नहीं किया । हार गया हूँ; लेकिन इस आम दरबारमें कहता हूँ कि अगर मेरे विरुद्ध वीर महाब्रतखाँ न होते तो मै इस औरतको इस सिहासनसे घसीट लाकर अस्थिकुण्डमें पटक देता और स्वयं सम्राट् जहाँगीर खड़े खड़े यह देखते ।

जहाँ०—(क्रुद्ध होकर) शाहजहाँ, अपनी जबान बंद करो ।

शाह०—पिताकी आज्ञा सिर-आँखो पर है ।

नूर०—(जहाँगीरको क्रुद्ध देखकर सुयोग पाकर) शाहजहाँ ! यह औरत ऐसी अवज्ञाकी पात्र नहीं है, यह मै तुम्हें अभी दिखाती हूँ । शाहजहाँ ! तुम्हारे सब अपराधोंके लिए तुमको मै एक साल कैदकी आज्ञा देती हूँ । (महाबतखाँसे) सेनापति, शाहजहाँको गिरफ्तार करो ।

महा०—क्षमा कीजिएगा सम्राज्ञी ! शाहजादेको अभय देकर मुट्ठीमे करके फिर कैद करना—इस धोखेबाजीमें महाबतखाँ नहीं शरीक हो सकता ।

नूर०—महाबत ! तुम नौकर हो । न्याय-अन्यायका विचार करना तुम्हारा काम नहीं है । तुम्हारा काम है, हमारी आज्ञाका पालन करना ।

महा०—तो सम्राज्ञी, महाबतखाँ उस आज्ञाका पालन करना अस्वीकार करता है।

नूर०—अस्वीकार करते हो? तो तुम भी विद्रोही हो!—सिपाहियो! महाबतखाँको गिरफ्तार कर लो।

महा०—करो; जिसमें साहस हो मुझे गिरफ्तार करो। बीस बरससे मैं तुम्हारा सेनापति हूँ! बीस बरससे अनेक वार तुम लोगोंको युद्धभूमिमें ले गया हूँ और विजयगर्वके साथ वहाँसे लौटा लाया हूँ। जिसकी इच्छा हो वह सम्राज्ञीकी आज्ञासे मुझे गिरफ्तार करे।

(सब चुप खड़े रहते हैं।)

नूर०—क्या! किसीकी भी हिम्मत नहीं है?

महा०—(जहांगीरसे) सम्राट्, आप बाँधिए। मैं कुछ नहीं कहूँगा। (हाथ आगे बढ़ा देता है।)

जहाँ०—महाबतखाँ! तुम्हें बाँधनेकी जंजीर आज भी तैयार नहीं हुई। जाओ महाब्बत, तुम्हें माफ करता हूँ।

नूर०—(खड़े होकर) कभी नहीं। सम्राज्ञी नूरजहाँ या तो इस समुद्रमें डूबेगी और या इस समुद्रकी छातीको पैरोंसे रोंधकर चली जायगी। वह इसकी लहरोंके द्वारा इधर उधर पटके जानेके लिए जीती नहीं रहेगी। महाबतखाँको गिरफ्तार करनेकी ताकत किसीमें नहीं है, तो मैं खुद गिरफ्तार करूँगी। देखूँ, भारत-सम्राज्ञी नूरजहाँको रोकनेकी ताब किसमे है!

(सिंहासनसे उतर पड़ती है। इसी समय
लैला तेजीसे प्रवेश करती है।)

लैला—वह ताब, वह ताकत, मुझमें है।

(सब सन्नाटेमें आ जाते हैं।)

लैला—सम्राट् ! सिंहासन पर अपाहिजकी तरह बैठकर आप सम्रा-

सम्राज्ञी ! मैं इस आम दरबारमें तुमको शाहजादा खुसरूकी हत्याके

मयी दृष्टिसे देखती है ।)



चौथा अङ्क ।



पहला दृश्य ।

स्थान—मंत्री आसफखाँके घरकी बाहरी बैठक ।

समय—प्रातःकाल ।

[शाही मुसाहब लोग बातचीत कर रहे हैं ।]

१ मु०—देखा ?

२ मु०—क्या ?

१ मु०—मैने जो कहा था वही हुआ कि नही ?

२ मु०—क्या कहा था ?

१ मु०—कहा था कि सम्राट्ने साम्राज्यकी ओर करवट ली है,—शीघ्र ही उधरसे करवट फेरेंगे ।

३ मु०—हाँ यह बात तो तुमने जरूर कही थी ।

४ मु०—मेरु-प्रदेशमे जैसे सुना जाता है कि सूर्य जब अस्त होते है तब छः महीनेके लिए; वैसे ही हमारे सम्राट्ने भी इस समय राजकाजसे छुट्टी ले ली है ।

१ मु०—हाँ, इस समय यथार्थमे नूरजहाँका राज्य है ।

३ मु०—चाहे जो कहो, सम्राज्ञीके राज्यकालमें हम एक तरह सुखसे है ।

१ मु०—सुखसे हैं ? कैसे ?

२ मु०—देशभरमे दिन-रात नाचना-गाना हुआ करता है—शराबकी बोतलें ढला करती हैं ।—नाचने-गानेका और मदिराका प्रवाह बह रहा है ।

४ मु०—इस प्रवाहसे कुछ बनता-बिगड़ता नहीं—अगर इस प्रवाहके ऊपर बीचबीचमें लहरे न उठतीं।

२ मु०—कैसे ?

४ मु०—यही, उस दिन हुक्म जारी हुआ कि सम्राट्की अनुमतिके विना कोई मुसाहब शराब नहीं पी सकेगा। और अगर वे आज्ञा दें तो सभीको शराब पीना पड़ेगा।

३ मु०—यह लो, सब मिट्टी कर दिया। वह बन्दरका राजा आ रहा है।

२ मु०—इसी राजाने खुसरूकी हत्या की है, क्यो ?

१ मु०—हाँ।—बड़ा ही पाजी है !

४ मु०—एँः, हमारा सब मजा इसने आकर किराकिरा कर दिया।

२ मु०—मुझे आश्चर्य हो रहा है कि यह साला सम्राट्के पुत्रकी हत्या करके भी बचा हुआ है।

४ मु०—केवल बचा हुआ ही नही है!—बढ भी रहा है। इसकी तोद नही देखते ?

३ मु०—साला राजासे महाराजा हो गया है।

४ मु०—होगा क्यो नही! वह शिवको छोड़कर अब दुर्गाका ध्यान कर रहा है। उसके ऊपर सम्राज्ञीकी कृपादृष्टि पड़ी है।

२ मु०—अच्छा, इस राजाने पुत्रकी हत्या कर डाली, और सम्राट्ने इसे कुछ नहीं कहा ?

४ मु०—अजी हुसैन ! तुम बल्कि—मगर—निश्चय ही राजनीतिके बारेमें कुछ नहीं समझते।

२ मु०—अजी कृष्णदास ! तुम तो सारे क्रियाविशेषण एक ही साँसमें कह गये।

[बन्दरके राजाका प्रवेश ।]

३ मु०—महाराजकी जय हो।

राजा—हे हें हें—आप लोगोंकी कृपा है! आप लोगोंकी कृपा है!

३ मु०—महाराजने खुसरूकी हत्या करके सरकारमें जो महाराजका खिताब पाया है—उसे हम लोग अदबमें भी नहीं भूल सकते; आपने देखा महाराज?

४ मु०—राजासे एकदम महाराज—कैसी छलाँग मारी है। बंदरके राजाके योग्य ही यह छलाँग है।—(और मुसाहबोंसे) मैने कहा था कि ये महाराज होंगे।

राजा०—हें हें हें हें—

१ मु०—देखो, दुम हिला रहे है। देखो दुम हिला रहे हैं।—ओः कैसा घृणित जीव है!

२ मु०—ठीक कुत्तेकी तरह दुम हिला रहे हैं।

४ मु०—यह उपमा तुमने बहुत ठीक दी हुसैन—

३ मु०—शाहजादा शाहजहाँने कहा है कि खुसरूकी हत्या करके आपने जैसा उनका उपकार किया है वैसा उनका सगा भाई भी नहीं कर सकता।

राजा०—हें हें हें हें—ऐसा कौन बड़ा काम किया है—ऐसा कौन बड़ा काम किया है। यह तो एक साधारण कर्त्तव्य मात्र था, साधारण कर्त्तव्य मात्र था।

१ मु०—कर्त्तव्य मात्र था!—पाजी!

(लात मारनेके लिए दौड़ता है। राजा जान लेकर भागता है।)

३ मु०—खूब झपटे थे! बंदरके राजासे चालाकी!

२ मु०—अब अपनी गर्दन बचाओ। जानते हो, वह सम्राज्ञीका जानवर है।

१ मु०—उसे मारकर मैं अपनी गर्दन देनेको तैयार हूँ। साला पाजी! जंगली सियार है!

४ मु०—नहीं, जंगली सियार नहीं। वह कुत्ता है।—वाह कैसी अच्छी उपमा तुमने दी है हुसैन—एकदम ठीक कुत्ता है।

२ मु०—वे मन्त्रीजी आरहे है।—

[आसफका प्रवेश ।]

४ मु०—क्यों मन्त्रीजी! बादशाहने आज कुछ नया हुक्म जारी किया है?

आसफ—हाँ किया है। बादशाहका हुक्म है कि आज रातको आप लोग शराब पियें और आनन्द मनावें।

४ मु०—सुभान अल्लाह! इस हुक्मके माने है, और वे स्पष्ट समझमें आ रहे हैं।

आसफ—मगर—

४ मु०—देखो, इसमें अगर 'मगर' करोगे तो मै चिल्लाऊँगा।

आसफ—'मगर' इसके भीतर नहीं, इसके बाहर है।

२ मु०—वह 'मगर' क्या है?

आसफ—लेकिन जान पड़ता है, आप लोग उस 'मगर'को पसंद न करेंगे। लेकिन वह 'मगर' खूब है।

३ मु०—कैसे?

४ मु०—'मगर' है या 'और'?

आसफ—'मगर' है।

४ मु०—तो वह मगर कह ही डालो। जोरसे खाँडा चलाओ। हम गर्दन झुकाये हुए हैं।

आसफ—तो वह ‘ मगर ’ सुनो। सम्राट्ने खुद कान छिदाये है, और कुण्डल पहने है। साथ ही हुक्म दिया है कि सब मुसाहबोंको कान छिदाकर कुण्डल पहनने होगे। नहीं तो आप लोगोंको दरबारमे जानेका हुक्म नहीं है।

२ मु०—सो कैसे ?

आसफ—कैसे क्या ! ऐसे ही।

३ मु०—ना ना, दिल्लगी है। क्यो आसफ ?—दिल्लगी है ?

आसफ—तो लो यह बादशाहका आज्ञापत्र देखो।

(आज्ञापत्र दिखाना।)

१ मु०—यह लो—कहता था कि नहीं ? सम्राट् ऐसे अपदार्थ, न होते तो वह पाजी राजा महाराज हो जाता !

२ मु०—कभी नहीं।

४ मु०—यह तो बहुत ही गड़बड़ हुआ। हम अगर कान छिदा-कर कुण्डल-बाली-बाले पहनना शुरू करेगे तो घरके भीतरवालियाँ क्या करेंगी ?

२ मु०—जान पड़ता है, कानमे कलमे खोसेगी।

१ मु०—वह हुक्म भी कब जारी होता है—देखना है।

२ मु०—नही, यह तो बेकायदे मनमाना हुक्म है।

३ मु०—तो फिर अब और क्या होगा। चलो, कान छिदावें। सम्राट्की आज्ञा ही है।

१ मु०—कभी नही। हम लोग विद्रोह करेगे। गुलाम लोग ही कान छिदाते है—यह बड़ा भारी अपमान है।

४ मु०—मनमाना हुक्म है।

२ मु०—बेशक।

आसफ—क्या करेंगे, निश्चय कर लिया?—कान छिदावेंगे, या विद्रोह करेंगे?

१मु०—तुम ठट्ठा कर रहे हो। सम्राट्के मन्त्री होकर एकदम—

३मु०—हाँ मन्त्री हुए हो, वह भी सम्राट्के साले होनेके जोरसे। मै भी अगर सम्राट्का साला होता।

आसफ—साले बननेमें देर कितनी लगती है!

दूसरा दृश्य ।

स्थान—नूरजहाँका कमरा।

समय—रात।

[नूरजहाँ अकेली खड़ी है।]

नूर०—यह भी एक नशा है। करीब करीब क्षमताके शिखर पर पहुँच गई हूँ, तथापि और भी ऊपर चढ़ना चाहती हूँ। मगर नूरजहाँ! सावधान!—तुम आज उसी शिखरकी कगार पर खड़ी हो। सावधान!—लेकिन यही क्यों? सावधान किसके लिए?—भय काहेका है? किसके लिए सोचूँ? मेरी कन्या—जिसके लिए इतनी चेष्टा की, इतना कुचक्र रचा, वह भी मेरा विरोध कर रही है। अब किसके लिए दुबधामें पड़ूँ? आज सब बन्धन काटकर बाहर निकली हूँ। इस विशाल संसारमें आज मै अकेली हूँ। अब किसका भय है? काहेके लिए भय है?—दो, घोड़ा दौड़ा दो नूरजहाँ। गिरो तो गिरो। या तो जय होगा, या मृत्यु ही होगी। अब अपनेको लौटानेमें मै भी असमर्थ हूँ।

[आसफ और जहाँगीरका प्रवेश।]

जहाँ०—नूरजहाँ! मन्त्रीका यह खयाल है कि महाबतखाँके पास कैफियत माँग भेजनेसे वे कैफियत न देंगे।

नूर०—क्या करेगा?

आसफ़—सम्राट्की आज्ञाको न मानेंगे, शायद विद्रोह करेंगे।—सम्राज्ञी! राज्य एक परिवारके तुल्य है। राजा पिता है। प्रजा उसकी सन्तान है। राजा अगर उनके साथ स्नेहका व्यवहार करता है तो वे भी उस पर स्नेह रखते है। अगर राजा उनकी नाकमें दम करता है तो वे भी राजाको तंग करते हैं।

नूर०—करे! इससे मैं नहीं डरती। विद्रोहीका सिर कुचलना मैं जानती हूँ।

जहाँ०—नूरजहाँ! सिपाहियोंके ऊपर महावतखाँका बहुत बड़ा प्रभाव देखकर तुमने ही प्रस्ताव किया था कि उसे सेनापतिके पदसे हटाकर बंगालका सूबेदार बना दो। इसीसे मैने उसे शाहजादा परवेजकी मातहतीमें बंगालका सूबेदार बनाकर भेज दिया। अब देखता हूँ, उसमें भी तुम्हें आपत्ति है।

नूर०—आपत्तिका कारण न होता तो मैं कभी आपत्ति न करती जहाँपनाह। महावत उड़ीसा जीतकर सौसे अधिक हाथी ले आया। लेकिन अबतक उन्हें आगरे भेजनेकी जरूरत ही उसने नहीं समझी। लूटका धन सब सम्राट्की सम्पत्ति है—सेनापतिकी नहीं।

आसफ़—हाथी भेजनेका समय अभी बीत नहीं गया सम्राज्ञी!

नूर०—बीत नहीं गया? आसफ़, तुम मन्त्रीके पदका अपमान कर रहे हो। मैं यहाँ बैठे देख रही हूँ कि महावतखाँ सम्राट्की प्रभुताको बिना किसी बाधाके अग्राह्य कर रहा है,—वह सुयोग पाकर बंगालमें विद्रोहका बीज बो रहा है।

जहाँ०—यह असंभव है।

नूर०—असंभव कुछ नहीं है, जहाँपनाह। केवल एक बात असंभव है—मर जाकर फिर लौट आना। महाबतखाँ सम्राट्के सामने दर्पके

साथ कह सकता है कि 'जिसमें ताकत हो, मुझे कैद करे'। तब भी जहाँपनाह महाबतखाँके नामपर जान देते हैं; तब भी जहाँ-पनाह सबेरे और शाम महाबतखाँका नाम जपा करते हैं। महाबतखाँके ऊपर जहाँपनाहको गहरा विश्वास है इस बातको महाबतखाँ जानता है। और वह उसके योग्य ही व्यवहार करता है।

जहाँ०—मै मनुष्य पर विश्वास करके जितना ठगा गया हूँ, अवि-श्वास करके उससे कहीं अधिक ठगा गया हूँ, नूरजहाँ।

नूर०—जहाँपनाहकी मर्जी। लेकिन मै एक बात कहे रखती हूँ, कि शाहजहाँके विद्रोही होने पर ही सम्राट् केलेके पत्तेकी तरह काँपने लगे थे; अगर महाबतखाँने विद्रोह किया तो उस भारी आँधीमें आप जमीन पर ही गिर पड़ेंगे।

जहाँ०—प्रियतमे, साम्राज्यमें एक शान्ति विराज रही है, उसे क्यों छेड़ रही हो?

नूर०—जहाँपनाह, वायुका बिलकुल ही न चलना आँधीकी सूचना देता है—आप जानते हैं?

जहाँ०—तुम क्या करना चाहती हो?

नूर०—मैं केवल महाबतखाँको बंगालसे हटाकर पंजाबमें रखना चाहती हूँ। यह कुछ विशेष परिवर्त्तन नहीं है। लेकिन हाँ, हमारी राजधानी लाहौर उसके अधिकारसे बाहर रहेगी।

आसफ—महाबतखाँ आत्माभिमान रखनेवाला आदमी है; वह इस अपमानको कभी नहीं सहेगा।

जहाँ०—(नूरजहाँसे) इससे लाभ क्या है?

नूर०—उसे उसकी शक्तिके घेरेसे हटाना ही मेरा उद्देश है। वह पंजाबमें हम लोगोंकी आँखोंके सामने भी रहेगा।

जहाँ०—जो जी चाहे करो।—मैं सोच नहीं सकता, सोचना चाहता भी नहीं।

नूर०—अच्छी बात है।—मन्त्री! तुम उसके पास आज्ञा भेजनेका बन्दोबस्त करो। मैं अपने हाथसे आज्ञापत्र लिखे रखती हूँ।

आसफ—सम्राट्की क्या यही आज्ञा है?

जहाँ०—जाओ आसफ!—क्यो हैरान करते हो?

[आसफका चुपचाप प्रस्थान।]

जहाँ०—अपने इस साम्राज्यका शासन प्रिये तुम करो। अब मेरा साम्राज्य—सुरा, सौन्दर्य और संगीत है।

नूर०—जो आज्ञा जहाँपनाह!—बाँदी!

[दासीका प्रवेश। नूरजहाँ उसे इशारा करती है। वह चली जाती है। इतनेहीमें पर्दा एकदम उठ जाता है और अपूर्व उज्ज्वल आभूषणोंसे भूषित नाचनेवालियाँ एक प्रकाशके उच्छ्वासकी तरह सम्राट्के सामने आजाती है।]

नूर०—देखिए जहाँपनाह!—

जहाँ०—यही मेरा साम्राज्य है—परियो!—नाचो—गाओ!

[बाजा बजता है। नाच शुरू होता है। मदिरा आती है। नूरजहाँ अपने हाथसे रत्नपात्रमें मदिरा ढालकर जहाँगीरको देती है। जहाँगीर पीता है।]

जहाँ०—सुखके कैसे अच्छे झरनेका आविष्कार किया गया है! आनन्दका कैसा सुन्दर यन्त्र तैयार किया गया है!—गाओ।

(नाचनेवालियोंका गीत।)

बहार—जल्द तिताला।

आओ हिलमिलकर नाचें गावें॥ आओ०॥
गहरी गरज मृदंग बजे, पग घुँघरू घने बजाय रिझावें॥आओ०॥
हम सब सुन्दर हृदय-हारिणी नट-नारी कौशल दरसावें।
हास्य-लास्यसे हाव-भावसे चिन्ता चितकी दूर भगावें॥आओ०॥
ताल-ताल संगीत उठे, फिर घन स्वर-जाल गानको छावें।
क्रमसे बनकर शोक-विनीरव तान, शून्यमें लय हो जावें॥आओ०॥

जहाँ०—कैसा मधुर संगीत है, नूरजहाँ । यह वासनाको जगा देता है मगर उसे पूर्ण नहीं करता; नन्दनवनकी सुगन्ध लाकर ही उसे लंबी साँसमें उड़ा ले जाता है; सौन्दर्यका पर्दा खोलकर ही घने मेघसे उसे घेरकर लिये चला जाता है ! हवाकी तरह उठकर हाहाकारके साथ चारों ओर फैल जाता है ।

[मगर नूरजहाँ जहाँगीरकी बात नहीं सुन रही थी,
न नाच ही देख रही थी । वह दूर पर शून्य-
की ओर एकटक ताक रही थी ।]

जहाँ०—संगीत—जिसकी तान मानो एक प्यास है; उल्लास जैसे एक आक्षेप है; हास्य जैसे एक हाहाकार है; आलिंगन जैसे एक छुरा है; अमृत जैसे विष है; स्वर्ग जैसे नरक है ! गाओ फिर गाओ ।

नाचनेवालियाँ फिर गाती हैं ।

गीत । लावनी ।

हम आकर यों ही यहाँ चली जाती हैं ।
प्राकृत प्रकाशकी रंगत दिखलाती हैं ॥
हम सब प्रकाशकी तरह दमक जाती हैं ।
हम विमल हँसीकी तरह चमक जाती हैं ।
हम कुसुमगंधकी तरह गमक जाती हैं ।
हम मद विकारकी तरह झमक जाती हैं ॥
हम सब तरंगकी तरह उमड़ आती हैं । हम आकर० ॥
हम अरुणगगनमें स्वर्ण-किरणसे चढ़तीं ।
आनन्दमार्गमें विचार विचर कर बढ़तीं ।
हम फिर सन्ध्याको उतर वहाँसे आतीं ।
बस रविकिरणोंके साथ अस्त हो जातीं ।
हम स्निग्ध कान्तियुत शान्ति-गान गाती हैं । हम आकर०
हम शरद-इंद्रधनुवर्ण दिखाकर छलतीं ।
हम ज्योत्स्नाकी सी अलसचालसे चलतीं ।

हम चपलाकी सी चमक निगाहें ढालें।
हम हँसकर बसकर चित्त मदन-मद डालें।
हम आती हैं, पर हाथ नहीं आती हैं। हम आकर० ॥
हम श्यामलतामें शिशिरकणोंमें बनमें।
हम इन्द्रधनुषमें नीलगगनमें घनमें।
हम गान-तानमें कुसुमगन्ध अभिनवमें।
हम चन्द्र-सूर्यकी किरणोंमें, यों सबमें।
हम स्वप्नराजसे आय वहीं जाती हैं। हम आकर० ॥

[एकाएक हलकासा अँधेरा छा जाता है। दमभरमें नाचनेवालियाँ गायब हो जाती हैं। नेपथ्यमें बहुत ही धीमे स्वरसे बाजा बजता है। धीरे धीरे वह बाजा बजना बंद हो जाता है।]

जहाँ०—नूरजहाँ।

नूर०—जहाँपनाह।

जहाँ०—तुम देवी हो या मानवी?

नूर०—मै दानवी हूँ।

तीसरा दृश्य।

स्थान—बंगालमें महाबतखाँका घर।

समय—दोपहर।

[महाबतखाँ चिन्तित होकर टहल रहे हैं।]

महा०—सगरसिंहका पुत्र, राणा प्रतापसिंहका भतीजा, मैं महाबतखाँ—विधर्मी मुगलका दास हूँ। धर्म छोड़ा था, शुरू जवानीकी उच्च आशाओंके नशेमें, प्रभुत्व और राज-सम्मानके लाभके लोभमें। वह प्रभुत्व, वह सम्मान मैंने पाया भी था। मै मुगल-सेनाका सेनापति हुआ भी। सब मुगल-सेनापति मुझे मानते थे। वे समझते थे, मानों मैं उनका सूर्य हूँ; मानों मेरी शक्ति एक दैव-शक्ति है, मानों मेरा हरएक कार्य

ईश्वरकी प्रेरणा है । इसीसे सम्राज्ञी नूरजहाँ मुझे डरती हैं । इसीसे उन्होने मुझे सेनापतिके पदसे हटाकर बंगालका सूबेदार बनाकर भेजा है । यह प्रभुत्व मैने पाया था । किन्तु कहाँ, मैने क्या पाया ! देश और धर्म छोड़कर—स्नेहके बन्धनको काटकर—केन्द्रसे च्युत होकर—मै उद्भ्रान्त धूमकेतुकी तरह दौड़ता हूँ—कहाँ ! किस लक्ष्यकी ओर ! अपने लिए, स्वर्गलाभमें भी शायद सुख नहीं है । दूसरेके लिए, भाईके लिए, देशके लिए, कुछ किये बिना शायद सुख अपूर्ण ही रह जाता है; एक असीम आकांक्षा बनी ही रह जाती है ।—लो वे शाहजादा आ रहे है ।

[परवेजका प्रवेश ।]

महा०—बन्दगी शाहजादा ।

पर०—महाबतखाँ ! पिता तुम्हारे ऊपर बहुत ही नाराज हैं; उन्होंने बंगालके सूबेसे बदलकर तुमको पंजाबका शासन-कर्त्ता बनाया है ।

महा०—यह क्या !—पंजाबका शासनकर्त्ता ?

पर०—हाँ पंजाबका । मगर लाहौर तुम्हारे अधिकारमे नहीं रहेगा ।

महा०—यह क्या ? इसका कारण ?

पर०—कारण कुछ लिखा नहीं । यह चिट्ठी तुम्हें दिखानेमें मुझे कुछ आपत्ति नहीं है । यह देखो । (पत्र दिखाता है ।)

महा०—(पत्र पढ़कर) आश्चर्य है । शाहजादा !—इसका कुछ कारण क्या आपने अनुमान किया है ?

पर०—नहीं ।—आदाब महाबतखाँ । (प्रस्थान ।)

महा०—समझ गया । यह भी उसी औरतकी हरकत है । सेनापतिके पदसे हटाकर, मेरे समर-शिष्य परवेजका अधीन कर्मचारी बनाकर भी उसकी बदला लेनेकी तीव्र प्रवृत्ति चरितार्थ नहीं हुई । वह

मुझे सीढ़ी-सीढ़ी करके नीचे उतार देना चाहती है।—नूरजहाँ! उच्च आशाका विष तुम्हारे दिमागमें व्याप गया है। आप ही जल मरनेके लिए तुम अपने चारों ओर आग सुलगा रही हो। अपने हाथों अपनी कब्र तैयार कर रही हो।—तुम्हारा विनाश अब बहुत दूर नहीं है।

चौथा दृश्य।

स्थान—लाहौरके महलका अन्तःपुर।

समय—प्रातःकाल।

[नूरजहाँ अकेली कीमती पलँगपर मखमलके तकियेका सहारा लगाये बैठी है।]

नूर०—मेरा जीवन एक गहरा और खाली गढ़ा है। जल नहीं है, इसीसे रक्तसे उसे पूर्ण कर रक्खा है। खाली गढ़ेकी अपेक्षा वह भी अच्छा है। मेरा वर्त्तमान एक बड़ी भारी निराशा है। इसी कारण एक विराट् हाहाकारसे उसे मैंने व्याप्त कर रक्खा है। नहीं तो इस निराशाका सन्नाटा असह्य हो उठता। मै मानों अपनेसे आप भागनेके लिए दौड़ रही हूँ। विकारकी गर्मीमें सोचती हूँ और अंकुश-ताड़नाके उन्मादमें काम करती हूँ।

[आसफका प्रवेश।]

नूर०—क्या खबर है आसफ?

आसफ—महाबतखाँ खुद आये है। वे शिविरसे बाहर सम्राट्से मिलनेकी राह देख रहे हैं।

नूर०—मुलाकात नहीं होगी। कुछ जरूरत नहीं है। जाकर कह दो।

आसफ—यह क्या बेगम? वे सिर्फ मुलाकात करना चाहते हैं, सो भी—

नूर०—चुप। मैं तुमसे उपदेश नहीं सुनना चाहती। मेरी आज्ञाका पालन करो। महाबतखाँसे कहो, सम्राट्की आज्ञा यही है कि वह इसी घड़ी पंजाबको रवाना हो जाय। मुलाकातकी जरूरत नहीं है।

(प्रस्थान।)

आसफ—भारतवर्षका वर्त्तमान इतिहास एक स्त्रीके बाधारहित स्वेच्छाचारका इतिहास बनता जा रहा है।

[जहाँगीरका प्रवेश। आसफ बंदगी करता है।)

जहाँ०—क्या खबर है आसफ ?

आसफ—सम्राज्ञीके पास आज्ञाके लिए आया था।

जहाँ०—किस बारेमें ?

आसफ—यह सम्राज्ञीकी आज्ञा देखिए। और कुछ कहनेकी जरूरत न होगी।

[जहाँगीर पत्र पढ़कर चुपचाप लौटा देता है।]

आसफ—जहाँपनाह इस आज्ञाका पालन करना होगा ?

जहाँ०—अवश्य।—जाओ।

[आसफका प्रस्थान।]

जहाँ०—नूरजहाँ—बड़ी ही तेजीसे तुमने घोड़ा दौड़ा दिया है—

[नूरजहाँ फिर प्रवेश करके सम्राट्को बन्दगी करती है।]

नूर०—सम्राट् यहाँ है !

जहाँ०—नूरजहाँ ! तुमने महाबतको मुझसे मिलने नहीं दिया ?

नूर०—नहीं। क्यों नहीं मिलने दिया, सुनिएगा ? पढ़िए यह महाबतखाँका पत्र।

(जहाँगीर पत्र लेकर पढ़ता है।)

नूर०—उसने अपने दामादके हाथ यह पत्र भेजा था। इतनी उसकी मजाल ! मैंने उसके दामादका सिर मुड़ाकर, गधेपर चढ़ा कर, उसको उसीके पास भेज दिया है।

जहाँ०—यह न करनेसे भी काम चल सकता था!

(पत्र लौटा देते हैं।)

नूर०—काम चल सकता था? साम्राज्यकी एक साधारण प्रजा जो ऐसी बात कह सकती है कि सम्राट् उसके प्राणोंकी रक्षाके लिए क्या जामिन दे सकते है, इस तरहका दावा—इस तरहकी भाषाका जो वह व्यवहार कर सकता है, इसका कारण यही है कि सम्राट्ने उसे बहुत अधिक मुँह चढ़ा रक्खा है।

जहाँ०—नूरजहाँ! साम्राज्यके सम्बन्धमें तुम मुझसे इस तरह बातचीत करती हो कि मैं जैसे दूधपीता बच्चा हूँ, और तुम जैसे द्वितीय बहरामखाँ हो। नूरजहाँ! महाबतखाँ साम्राज्यकी एक साधारण प्रजा नहीं है। वह सज्जन, आत्माभिमानी और क्षमताशाली है—उसमे ये तीन भयानक गुण है। याद रक्खो।

नूर०—मुझ पर सम्राट्को विश्वास न हो तो राज्यकी बागडोर सम्राट् फिर अपने हाथमें ले ले।

जहाँ०—नहीं प्रिये! मैने जो छोड़ दिया उसे मै फिर लौटा लेना नहीं चाहता। साम्राज्य मिट्टीमे मिल जाय। मुझे कुछ भी क्षोभ न होगा।

(नूरजहाँ दमभर सन्नाटेमें खड़ी रहती है।)

नूर०—क्या हुआ स्वामी!—ऐसा कुछ हुआ है क्या, जिससे मेरे प्रभु मुझ पर नाराज हो गये है?

जहाँ०—तुम्हारे ऊपर नाराज होऊँगा? मै?—हे जादूगरनी! तुमने मुझे अपने किस मोहन-मन्त्रसे मुग्ध कर रक्खा है! हे काली नागिन! तुमने अपनी किस जहरीली साँससे मुझे शिथिल कर रक्खा है! मैं तुममें मग्न हो रहा हूँ; उठ नहीं सकता—निकल नहीं सकता।

रास्ता भूल गया हूँ; इस भुलभुलैयासे निकलनेकी ताकत नहीं है ।— तुम्हारे ऊपर नाराज होऊँगा ?

नूर०—तो जहाँपनाह नाराज नहीं हुए ?

जहाँ०—नहीं नूरजहाँ । मैंने तो एक बातकी बात कही है । मैने तुम्हें यह साम्राज्य दिया है, चाहे भोग करो—चाहे मिटा दो । मैने जो साम्राज्य पाया है, उसके आगे यह कुछ नहीं है ।—चलो नाट्यशालामें ।

नूर०—चलिए ।

जहाँ०—सुरा, सौन्दर्य और संगीत मुझे घेरे रहें । और उसके ऊपर तुम अपने रूप, मधुर स्वर, चुम्बन और आलिङ्गनसे निहाल करती रहो प्रिये । आँखोंके आगेसे यह पृथ्वी हट जाय ।—कितने दिन यहाँ जीना है !

पाँचवाँ दृश्य ।

स्थान—उदयपुरमें शाहजहाँका महल ।

समय—दोपहर ।

[मेवारके राणा कर्णसिंह और शाहजादा शाहजहाँ बातचीत कर रहे हैं ।]

कर्ण०—शाहजादा, आपके सत्कारमें मेरी ओरसे कमी तो नही होती ?

शाह०—कमी राणा साहब !—मै सपरिवार यहाँ जैसी शान्ति और सुखमें हूँ वैसी शान्ति और सुख आगरेमें भी नहीं था । आपने मेरे लिए महल तैयार करा दिया है, सिंहासन तैयार करा दिया है और आराधनाके लिए मसजिद बनवा दी है ।

कर्ण०—शाहजादाकी जब जो इच्छा हो, अनुग्रह करके मुझे जता दें। मैं अपनी शक्तिभर उसे पूर्ण करूँगा।

शाह०—कहनेके पहले ही मेरी सब इच्छायें पूर्ण हो जाती हैं!

[सेनापति विजयसिंहका प्रवेश।]

कर्ण०—क्या खबर है विजयसिंह?

विजय०—बाहर मुगल-सेनापति महाबतखाँ महाराणासे मिलनेके लिए खड़े है।

कर्ण०—महाबतखाँ!

विजय०—हाँ महाराना।

कर्ण०—उन्हे सम्मानके साथ ले आओ।

(विजयसिंहका प्रस्थान।)

शाह०—महाबतखाँ एकाएक यहाँ क्यों आये हैं!

[विजयसिंहके साथ महाबतखाँका प्रवेश।]

महाबत०—बन्दगी शाहजादा! बन्दगी राणा साहब!

शाह०—बन्दगी महाबतखाँ।

कर्ण०—मै अब सेनापति नहीं हूँ राणा साहब।

शाह०—ठीक है—तुम तो अब बँगालके सूबेदार हो।

महा०—वह भी नहीं हूँ। सम्राज्ञीके अनुग्रहसे मै उस सम्मानसे भी खाली हूँ।

शाह०—यह क्या! तो तुम अब क्या हो?

महा०—कुछ नहीं।—एक पुराना राजपूत योद्धा हूँ। मैंने अपना धर्म अवश्य छोड़ दिया है, पर मुझमें रक्त राजपूतका ही है।—हाय, यह कलंक धोकर दूर करनेका अब कोई उपाय नहीं है। क्योंकि सैकड़ों तपस्या करके भी मैं अब हिन्दू नहीं हो सकता।—मगर

अबकी यह इच्छा हुई है कि एकबार हिन्दुओंकी तरफसे लडूँगा, जैसे कि अबतक मुसलमानोंकी तरफसे लड़ता रहा हूँ।

शाह०—क्यों महाबत! मामला क्या है?

महा०—मामला यही है कि इस समय सम्राट् जहाँगीर नहीं है; सम्राट् हैं नूरजहाँ! बिना अपराधके उन्होंने मुझे सेनापतिके पदसे हटाकर परवेजकी मातहतीमें बंगालका सूबेदार बनाकर भेजा। फिर बिना दोषके पंजाबको बदल दिया। मने एकबार सम्राट्से मिलना चाहा था। उसके लिए मेरे दामादका सिर मुड़ाकर, गधेपर चढ़ाकर, उसे मेरे पास लौटा दिया! उसके बाद मै खुद बादशाहके खीमेके द्वारपर गया। वहाँसे भी कोरा लौटा दिया गया।—मामला यही है।

शाह०—इस औरतका साहस अद्भुत है।

कर्ण०—इसीसे आज अचानक आप यहाँ आये हैं खाँसाहब।

महा०—मै आपके यहाँ एक नौकरीकी खोजमें आया हूँ। धर्म मेरा चाहे जो हो, मै पुराना राजपूत सैनिक हूँ।—मेवार मेरी जन्म-भूमि है। आप मेवारके राणा है। आपकी अधीनतामें मै एक सेनापतिका पद चाहता हूँ। उसका अपमान नहीं करूँगा।

कर्ण०—मै अभी आपको अपनी सारी मेवार-सेनाका सेनापति बनाता हूँ।

महा०—मेवारके राणाकी जय हो! (शाहजहाँसे)शाहजादा! मुझे नमकहराम न समझिएगा। मैं मुगलोंका दास हुआ था, विधर्मी हुआ था, अपने देशके विरुद्ध युद्धमे खड़ा हुआ था, इसका कारण यही था कि मैने सम्राट्का नमक खाया था। अब मेरा बादशाहसे कोई सम्बन्ध नहीं रहा। सम्राट्ने अपने हाथसे वह बन्धन काट दिया है। अबतक मैं एक पिंजड़ेमे बंद शेरकी तरह गरज रहा था; आज

पिंजड़ा तोड़कर बाहर निकल आया हूँ। अबकी दिखाऊँगा कि अब-तक जो मैं मुगलोंके पक्षमें रहा सो अपने धर्मका खयाल करके, मुग-लोकी शक्तिसे नहीं।

शाह०—महाबतखाँ! मै तुम्हारे इस क्रोधका कारण समझ रहा हूँ। पिता सम्राज्ञीके हाथका खिलौना हो रहे हैं। सम्राज्ञी एक मन-माना काम करनेवाली स्त्री है—उसके नियम-हीन राज्यमें रहना किसी भी स्वाभिमानी व्यक्तिके लिए असंभव है। इसीसे मैं भी उदयपुरके राणाका मेहमान होकर ठहरा हुआ हूँ! तुम जो उस स्त्रीको नीचा दिखाया चाहो—दमन किया चाहो—यहाँतक कि तुम अगर इस स्वेच्छाचारके राज्यको मिटाकर फिर हिन्दू-साम्राज्यकी स्थापना करना चाहो, तो उससे भी मुझे संपूर्ण सहानुभूति है। चाहो तो इस उद्दे-श्यको पूरा करनेमें मैं सहायता करूँगा!

महा०—शाहजादा आप महत् और उदार है।—राणा सा०! छः महीनेके लिए इस सेनामेसे ५००० राजपूत घुड़सवारोको अपने अधीन रखनेका अबाध अधिकार मै आपसे माँगता हूँ।

शाह०—इन पाँच हजार सैनिकोंको लेकर तुम क्या करोगे महाबत?

महा०—सम्राट्से भेट करूँगा। वे मुझसे भेट करना नहीं चाहते। मगर मै उनसे भेट करूँगा।—राणा सा० मैं और कुछ तनख्वाह नहीं चाहता। यह मेरी पेशगी तनख्वाह है। इतने अनुग्रहके लिए मैं आपके चरणोंमें जन्मभर बिका रहूँगा।

कर्ण०—मुझे इसमें कुछ आपत्ति नहीं है, मेवार-सेनापति।

महा०—वर्तमान सेनापति कौन है?

कर्ण०—(विजयसिंहको दिखाकर) ये हैं। इनका नाम विजय-सिंह है।

महा०—विजयसिंह! तुम ५००० राजपूत सवार चुन लो। ऐसे सवार चुन लो, जो जय प्राप्त किये बिना कभी युद्धके मैदानसे लोटे नहीं, जो मुँहसे कहते बहुत कम हो, जो इशारे पर प्राण दे सकते हों।

कर्ण०—जो आज्ञा सेनापति।

महा०—जो लोग इशारे पर प्राण दे सकें विजयसिंह!—राणा साहब! अब मुझे कुछ विश्राम करनेके लिए अनुमति दीजिए। मैं बहुत थका हुआ हूँ।

कर्ण०—विजयसिंह! इन्हे विश्राम करनेके स्थानमें ले जाओ। इनकी सब तरहसे खातिर करनेका प्रबन्ध मैं तुम्हें सौंपता हूँ!—जाओ।

महा०—जो लोग इशारेपर प्राण दे सकते हों! समझे विजयसिंह?—राणा सा०! जो अपनी इज्जतको जानसे बढ़ कर समझता है, उसकी इज्जतमें कभी बल नहीं आता। आदाब—

(महाबतखाँ और उनके पीछे विजयसिंहका प्रस्थान।)

कर्ण०—शाहजादा साहब!

शाह०—राणा साहब।

कर्ण०—अब मेरी समझमें आ गया कि हिन्दूजातिका पतन क्यों हुआ।

शाह०—क्यो हुआ?

कर्ण०—जब देखता हूँ कि महाबतखाँके समान धर्मात्मा, कर्मवीर व्यक्तिको कुछ आचारभेदके कारण हम अपना कह कर जातिके भीतर लेकर गले नहीं लगा सकते, तब समझमें आ जाता है कि हम लोगोंकी यह गिरी हुई दशा क्यों है। जहाँ जीवन है, वहाँ वह बाहरकी चीजको खींचकर अपना लेता है और जहाँ मरण है, वहाँ वह खुद सौ

टुकड़े होकर इधर उधर गिर पड़ता है। हमने इन महाबतखाँको छोड़ दिया है—और आप लोगोने अपना लिया है। इसीसे आप लोग उन्नति कर रहे हैं और हम नीचे गिर रहे है।

छट्ठा दृश्य।

स्थान—सिन्धुनद।

समय—प्रातःकाल।

[एक किनारे पर नूरजहाँ और मुगल-सेना है और दूसरे किनारेपर राजपूतोंकी सेना है। बीचमे पुल है। पुलके ऊपर भी राजपूत-सेना है। हाथीकी पीठपर नूरजहाँ बैठी है। उसके सामने घोड़ेकी पीठपर आसफखाँ है।]

नूर०—महाब्रतखाँ सिर्फ ५००० सेना लाया है और तुम उसीको देखकर भयसे विह्वल हुए जा रहे हो—सेनापति कहाँ है?

आसफ—उस पार।

नूर०—मूर्ख है! उस पार क्या कर रहा है—जब कि सब सेना इस पार है। सैनिकोको आज्ञा दो, उस पार जाकर राजपूत-सेना पर धावा करे।

आसफ—सेनापति कहाँ है?

नूर०—मैने तुम्हे सेनापति बनाया।

आसफ—पुलका रास्ता जानेके लायक नहीं है। उस पर राजपूतसेनाने अपना अधिकार कर लिया है।

नूर०—यह मैने देख लिया है आसफ। उसी राजपूतसेनाके बीचसे जाओ।

आसफ—इसमे बहुतसी मुगल-सेना नष्ट होगी।

नूर०—होने दो!—जाओ आक्रमण करो।

[आसफका प्रस्थान।]

नूर०—विचित्र साहस है इस महाबतखाँका। केवल पाँचहजार सेना लेकर इतनी बड़ी मुगलसेना पर चढ़ाई करना बेशक बड़ेही साहसका काम है !—वह काहेका शब्द है ?

(एक सिपाही घबराया हुआ.सा प्रवेश करता है ।)

सैनिक—बेगम साहबा ! हमारी सारी राजपूत-सेना महाबतखाँसे मिल गई है।

नूर०—मिल गई है ! क्या !

सैनिक—हाँ जहाँपनाह ! वे युद्धमें एकाएक 'जय महाबतखाँकी' कहकर चिल्ला उठे। उसके बाद सबके सब महाबतखाँकी सेनामें जाकर मिल गये।

(पुलके बीचका हिस्सा जल उठता है ।)

नूर०—सम्राट् अभी तक उसी पार हैं ?

सैनिक—हाँ खुदावन्द ।

नूर०—आगे बढ़ो—क्यो आसफ ?—

आसफ—(प्रवेश करके) सम्राज्ञी ! राजपूतसेना महाबतखाँकी सेनासे मिल गई है।

नूर०—सो सुन चुकी हूँ। और कुछ ?

आसफ—राजपूत-सेनाने आग लगा कर पुल जला दिया है। उस पार जानेका अब कोई उपाय नहीं है।

नूर०—सम्राट् उस पार हैं ?

आसफ—हाँ वे उस पार हैं।

नूर०—तैर कर उस पार जाओ ! आक्रमण करो ।

आसफ—सम्राज्ञी—

नूर०—बस आक्रमण करो ।

(आसफका प्रस्थान ।)

[सैनिक लोग जलमें फाँदकर तैरने लगते हैं। महाबतखाँकी सेना पुल छोड़कर किनारे पर जाकर उन पर गोली बरसाती है।]

नूर०—(यह देखकर हाथीवानसे) महाबत ! हाथी बढ़ाओ—उस पार चलो।

महा०—खुदावन्द—

नूर०—बढ़ाओ—

[पर्दा बदलता है।]

अन्य दृश्य।

स्थान—सिन्धुनदके किनारे सम्राट्‌का डेरा।

समय—प्रभात।

[द्वारके पास दो पहरेदार खड़े हैं।]

दोनों—यह क्या है ? यह सब क्या है ?

[दो सैनिक घबराये हुए प्रवेश करते है।]

दोनों सैनिक—यही खीमा है !—(पहरेदारोंसे) बादशाह सलामत कहाँ हैं ?

१ पह०—क्या हुआ ! बाहर यह इतना शोरगुल काहेका है ?

१ सै०—बादशाह कहाँ हैं ? जल्द बताओ।

१ पह०—क्या हुआ, पहले सुने तो।

२ सै०—राजपूत सेनाने शाही डेरे पर धावा कर दिया है।

१ पह०—यह क्या ! कौन राजपूत-सेना ?

२ पह०—कितनी सेना है ?

२ सै०—पाँच हजार। आओ, बादशाह सलामतको अभी खबर दो।

१ पह०—और हमारी सेना क्या कर रही है ?

१ सै०—सब उस पार है।

२ पह०—उसने खबर नहीं पाई?

२ सै०—पाई है—जाओ। पहले बादशाहको खबर दो। अब समय नहीं है।

१ पह०—मैं बुलाता हूँ बादशाहको। (प्रस्थान।)

२ पह०—हमारी सेना इस पार कितनी है?

१ सै०—एक हजारसे अधिक न होगी।

२ पह०—वे सब क्या कर रहे है?

१ सै०—लड़ते हैं, मरते है! और क्या करेंगे? राजपूतोंकी सेना पागलसी हो रही है। और खुद महाब्रतखाँ उसके सेनापति है। (नैपथ्यमें बन्दूककी आवाज सुन पड़ती है) वे—वे।

२ सै०—वे आगये।

(युद्ध करते करते महाबतखाँकी सेना और सम्राट्की सेना प्रवेश करती है। अपनी सेनाके पीछे खुद महाबतखाँ है।)

महा०—बस अब हत्या मत करो। (राजपूतोंके रुक जाने पर) मुगल सिपाहियो! हथियार रख दो! नहीं तो वृथा तुम्हारी हत्या करनी पड़ेगी। मैं तुम्हारे प्राण नहीं लेना चाहता। मैं सम्राट्को चाहता हूँ। अगर प्राण प्यारे हैं—हथियार रख दो।

(सम्राट्की सेना हथियार रख देती है।)

महा०—अब सम्राट्को बुलाओ।

[जहाँगीरका प्रवेश।]

जहाँ०—यह सब गोलमाल काहेका है?—यह क्या! महाबतखाँ!

महा०—हाँ जहाँपनाह।

जहाँ०—इसके माने क्या महाब्रत! मामला क्या है! इस वेषमें! इस तरह!

महा०—मैंने देखा, नहीं तो सम्राट्के दर्शन मिलना असंभव हैं। माफ कीजिएगा जहाँपनाह, मैं इस उपायका सहारा लेनेके लिए लाचार हुआ हूँ। सम्राज्ञीने जब कहला भेजा की महाबतखाँको सम्राट्के दर्शन नहीं मिलेंगे; तब महाबतखाँने प्रतिज्ञा की कि वह दर्शन जरूर ही करेगा! मैं जानता हूँ जहाँपनाह कि अनुनयविनयकी अपेक्षा युक्तिका जोर अधिक है; लेकिन तोपकी आवाजके आगे कोई भी नहीं ठहरता—न अनुनय और न युक्ति।

जहाँ०—मेरी सेना कहाँ है?

महा०—सब उस पार है। वह इस पार नहीं आ सकती जहाँपनाह। उसकी आशा न कीजिएगा। मैंने बीचका पुल जला दिया है।

जहाँ०—ओ!—समझा। महाबत! तुम्हारी यह ढिटाई मैंने माफ की। अपनी सेनाको बिदा कर दो।—चुप क्यों हो?

महा०—जहाँपनाह! ये लोग मेरे जीवनकी रक्षाके लिए उचित जामिन लिये बिना जाना नहीं चाहते।

जहाँ०—तुम्हारा मतलब क्या है?

महा०—मेरा मतलब जहाँपनाहको यह धारणा करा देना है कि महाबतखाँ जहाँपनाहका पालतू कुत्ता नहीं है कि आप जब 'तू' करके बुलावेंगे तब वह दुम हिलाता हुआ चला आवेगा; और आप जब लात मारकर दुतकार देंगे तब वह दुम दबाकर भाग जायगा।

जहाँ०—(भौंहें टेढ़ी करके) महाबत! बेशक मैंने तुम्हारे साथ अन्याय किया है। क्या जामिन चाहते हो, बोलो।

महा०—कुछ नहीं। जहाँपनाह, शिकारके लिए जानेका समय हो गया है। चलिए। फिर विचार किया जायगा।

जहाँ०—शिकारके लिए ?

महा०—हाँ जहाँपनाह, शिकारके लिए ।

जहाँ०—यहाँ तो शिकार पर जानेका मेरा घोड़ा भी नहीं है ।

महा०—मैं देता हूँ ।—विजयसिंह ! मेरा सबसे अच्छा घोड़ा जहाँपनाहके लिए ले आओ । देखो, वह घोड़ा भारत-सम्राट्के योग्य हो ! और तुम खुद सेनासहित बादशाहके शरीर-रक्षक रहना । जाओ ।

(विजयसिंहका प्रस्थान ।)

जहाँ०—(भौंहें टेढ़ी करके) समझ गया ! तुम मुझे ही जामिनके तौर पर रखना चाहते हो ।—तो मैं तुम्हारा कैदी हूँ ?

महा०—ठीक कैदी नहीं हैं जहाँपनाह । लेकिन हाँ मैं अभी जहाँपनाहके यशकी रक्षाका भार लेता हूँ । जहाँपनाह ! आप भारतके सम्राट् हैं ! आप महात्मा अकबरके पुत्र हैं ! लेकिन आपका शासन इस समय एक मतवालेका मतवालापन, एक पागलका प्रलाप, एक उच्छृंखल व्यक्तिका स्वेच्छाचार हो रहा है । आप कौन हैं ? कहाँसे आये हैं ? किस हकसे आप एक बहुत प्राचीन सभ्य जातिके ऊपर राज्य-शासन करने बैठे हैं—यदि वह शासन न्यायसंगत नहीं है ? हिन्दुओंने अपना साम्राज्य गँवा दिया है, इसका कारण यही है कि उनका आशा-भरोसा यहाँ नहीं, (ऊपर उँगली उठाकर) वहाँ है । परलोकके बारेमें बहुत अधिक सोचते-विचारते रह कर उन्होंने इस लोकको गँवा दिया है । तब भी याद रखिएगा सम्राट्—यदि यह शासन अन्याय-शासन होगा, यदि यह शासन एक विराट् अत्याचारका रूपान्तर मात्र होगा, यदि आप हिन्दुओंकी असीम उदासीनताको छेड़कर उन्हें पागल बना देंगे, तो दम भरमें मुगल-साम्राज्य सबेरेके कुहासेकी तरह विलीन हो जायगा ।—आइए सम्राट् ।

सातवाँ दृश्य।

स्थान—आगरेमें सम्राट्का अन्तःपुर।

समय—सायंकाल।

[लैला और शहरयार बातचीत करते है।]

शहर०—सुना है लैला ? पिताका हाल सुना है ?

लैला—नहीं।—सुननेको जी भी नहीं चाहता।

शहर०—वे महाबतखाँके कैदी हैं। और तुम्हारी मा—

लैला—मेरी मा ?

शहर०—वे हाथीकी पीठपर बैठकर सिन्धुनद पार होने जारही थीं। लेकिन उन्हे फिर लौट आना पड़ा।

लैला—उसके बाद ?

शहर०—उसके बाद वे भी महाबतखाँके हाथमे पड़कर कैद हो गई। वे और आसफ कई जगह महाबतखाँकी सेनासे हारे और अन्तको उन्होंने महाबतखाँकी अधीनता स्वीकार कर ली।

लैला—क्या बात है ! पापका दण्ड शुरू हो गया। ईश्वर है।

शहर०—लैला ! तुम्हारा आचरण मुझे कुछ—

लैला—अद्भुत जान पड़ता है। क्यों ?—इसीसे तो मै तुमको इतना प्यार करती हूँ।

शहर०—तुम्हारा चरित्र मुझे अद्भुत जान पड़ता है, इससे ?

लैला—नही। तुम बहुत ही सीधे-सादे हो, इससे मै तुम्हें प्यार करती हूँ।

शहर०—इतने दिन हुए, तब भी मै तुम्हें समझ नहीं सका।

लैला—समझ नहीं सकोगे !—प्रियतम ! एक बात पूछती हूँ—मेरे सिवा और सबको क्या तुमने समझ लिया है ? अपने भाइयोंको, अपने बापको, ठीक समझ लिया है ?

शहर०—शायद समझ लिया है ।

लैला०—समझ लिया है ! मेरे भोलेभाले स्वामी !—नहीं प्रियतम ! संसारमें आजतक कोई भी किसीको नहीं समझ सका। पृथ्वीके हरएक मनुष्यके हृदयका कमसे कम कुछ हिस्सा अन्यके निकट सदा अन्धकारमय रहता है । इसीसे शायद दयामय ईश्वरने ऐसा विधान किया है । अगर एक दिन पृथ्वीपरके सब मनुष्योंका हृदय एकदम खुल जाय तो यह पृथ्वी बड़ी ही बीभत्स देख पड़े ।—ईश्वर, इसके सिवा क्या तुम्हारे जगत्में और भी एक नरक है ?

शहर०—कुछ समझमे नहीं आया ।

लैला—समझनेकी चेष्टा भी मत करो । तुम कुछ भी नहीं समझते, यही तुम्हारे चरित्रका माधुर्य है । उसे न खो देना । इसे अगर खो दोगे तो तुममें प्यार करनेकी चीज और कुछ न रह जायगी । (प्रस्थान ।)

शहर०—इतने दिन हो गये, पर मेरी समझमें नहीं आया कि लैला मुझे चाहती है या निरादरकी दृष्टिसे देखती है । कुछ भी हो, मैं उसके इस तरहके भावको नहीं सहूँगा । अबकी मै साफ साफ कह दूँगा कि इस तरहका व्यवहार मुझे पसंद नहीं है ।

आठवाँ दृश्य ।

स्थान—सम्राट्का शिविर ।

समय—प्रातःकाल ।

[महाबतखाँ अकेले कुछ सोचनेकी मुद्रासे टहल रहे हैं ।]

महा०—नहीं, उसका मरना ही ठीक है। यह-सम्राज्ञी ही सम्राट्के परिवारमें विच्छेद, विग्रह और अशान्ति ले आई है; साम्राज्यमें विलास, विशृंखला और अत्याचार ले आई है; पृथ्वीपर एक असंहनीय स्पर्द्धा, स्वेच्छाचार और पाप ले आई है।—उसे मरना ही होगा।

राजपरिवारकी भलाईके लिए, साम्राज्यकी भलाईके लिए, मनुष्य-जातिकी भलाईके लिए, उसका मरना ही ठीक है। और वह भी आज ही, जहाँतक जल्दी हो सके।—लो वे सम्राट् आ रहे हैं।

[जहाँगीरका प्रवेश। महाबतखाँ सिर झुका कर बंदगी करता है।]

जहाँ०—तुम्हारा मतलब क्या है महाबत?

महा०—एक बार मिलना चाहा था।—बैठिए जहाँपनाह।

जहाँ०—(बैठकर) अच्छी बात है! अब अपना मतलब कहो।

महा०—(दमभर चुप रहकर धीरे धीरे) जहाँपनाह! अपना निवेदन प्रकट करनेके पहले मै एक बात जता देना आवश्यक समझता हूँ। सम्राट् यह न समझें कि मै जहाँपनाहको अपने काबूमें पाकर किसी तरहका हुक्म चला रहा हूँ। जहाँपनाहके आगे मेरा एक अभियोग है। उसका मै केवल समदर्शितासे न्याय-विचार कराना चाहता हूँ।

जहाँ०—किसके विरुद्ध तुम्हारा अभियोग है महाबतखाँ?

महा०—(दमभर ठहर कर) मुझे आशा है कि मैं जिसके विरुद्ध अभियोग उपस्थित कर रहा हूँ उसके रूप, उसके पद और उसके अन्य सब गुणोंको जहाँपनाह भूल जायँगे। सिर्फ यह विचार करेंगे कि वह व्यक्ति दोषी है या नहीं। फिर अगर वह दोषी प्रमाणित हो तो उसे आप योग्य दण्ड दें। बस यही प्रार्थना करता हूँ।

जहाँ०—अच्छी बात है। किसके विरुद्ध तुम्हारा अभियोग है?

महा०—भारत-सम्राज्ञी नूरजहाँके विरुद्ध।

जहाँ०—सो मैं पहले ही समझ गया था। कहो, क्या अभियोग है?

महा०—पहला अभियोग यह है कि उन्होंने बंदरके राजाके द्वारा शाहजादा खुसरूकी हत्या कराई है, और उसीसे पूजनीया सम्राज्ञी रेवाकी मृत्यु हुई है।

जहाँ०—बदनसीब शाहजादा खुसरू!

महा०—दूसरा अभियोग यह है कि उन्होंने अपना कोई गूढ़ उद्देश्य सिद्ध करनेके लिए उस हत्याका अपराध शाहजादा शाहजहाँके मत्थे मढ़ा, और इस तरह उन्हें विद्रोहके लिए उत्तेजित किया । और—

जहाँ०—और ?

महा०—तीसरा अभियोग यह है कि उन्होंने जहाँपनाहके नामकी आड़में अपनी उच्छृंखल प्रवृत्तिके अनुसार काम करके जहाँपनाहके पूज्य नाम और उज्ज्वल यशको कलंकित किया है। इन तीनों अभियोगोंमेंसे अगर एकको भी सम्राट् झूठा समझें तो सम्राज्ञीको छोड़ दें

जहाँ०—और अगर वह अपराधी ठहरे ?

महा०—तो दण्ड दीजिए ।

जहाँ०—(चुप रहते हैं।)

महा०—तो मेरे तीनों अभियोग सत्य है ?

जहाँ०—(चुप रहते हैं।)

महा०—इन अपराधोंके योग्य दण्ड केवल मृत्यु है !

जहाँ०—महाबतखाँ ! सुनो—

महा०—न्याय-विचार कीजिएगा ।—धर्मकी दोहाई है !

जहाँ०—(चुप रहते हैं।)

महा०—जहाँपनाहके विचारमें उनके योग्य दण्ड यही है कि नहीं ?

जहाँ०—हाँ, उनके योग्य दण्ड मृत्यु ही है ।

महा०—तो फिर सम्राज्ञीके लिए मृत्युदण्डकी इस आज्ञा पर दस्तखत कीजिए । (कागज और कलम सामने रखता है।)

जहाँ०—तो भी—

महा०—सम्राट् विचार कर चुके । दण्ड दीजिए—दस्तखत कीजिए ।

(जहाँगीर चुपचाप दस्तखत कर देते हैं।)

महा०—जाओ, यह आज्ञा सम्राज्ञीके डेरे पर ले जाकर उन्हें दिखाओ। उसके बाद तुम आप इस आज्ञाका पालन करो। अब दुबारा आज्ञाकी कुछ जरूरत नहीं है।

(विजयसिंहका आज्ञा लेकर प्रस्थान।)

महा०—यही तो सम्राट् जहाँगीरके योग्य न्याय-विचार है।—जहाँपनाहने जबतक स्वयं शासन किया तबतक शत्रु भी उसके विरुद्ध कुछ कह नहीं सके। क्योंकि वह शासन न्यायसंगत था। उसके बाद इस सम्राज्ञीके प्रभावने सम्राट्के उज्ज्वल यशको राहुकी तरह ग्रस लिया। बंदेका काम है उस यशको ग्राससे छुड़ाना। हम अपने सम्राट् जहाँगीरको फिर प्राप्त करना चाहते हैं। उसके बाद मेरा काम समाप्त हो जायगा।

विजय०—(फिर प्रवेश करके) सम्राज्ञी मरनेसे पहले एक बार सम्राट्से मुलाकात करना चाहती हैं।

(जहाँगीर महाबतखाँके मुँहकी ओर देखते है।)

महा०—विजयसिंह—

[विजयसिंहका प्रवेश।]

महा०—मुलाकात! किस लिए?—पूछ आओ।

(विजयसिंह जाता है। जहाँगीर चुपचाप
जमीनकी ओर निहारते रहते है।)

महा०—मालूम नहीं, सम्राज्ञी नूरजहाँने किस जादूके बलसे जहाँपनाहकी न्यायनिष्ठाको ग्रास कर रक्खा था। मगर वह मोह, वह मेघ, जब हट जायगा तब जहाँपनाह ही मुझे धन्यवाद देंगे—यह मैं जानता हूँ।

[विजयसिंहका प्रवेश।]

विजय०—सम्राज्ञीने कहा है कि मरनेसे पहले पतिका दर्शन करना स्त्रीका धर्म है ।

महा०—अच्छा उन्हें ले आओ ।

(विजयसिंहका प्रस्थान ।)

महा०—सावधान जहाँपनाह !—सम्राज्ञीकी बातोंमें आ न जाइएगा ! अपने मनको अपने काबूमें रखिएगा । याद रखिएगा, आप वही सम्राट् जहाँगीर हैं ।

[विजयसिंहके साथ नूरजहाँका प्रवेश । बादशाहको बन्दगी करना ।]

नूर०—ये दस्तखत जहाँपनाहके है ?

(जहाँगीर चुप रहते है ।)

नूर०—तो यह जाल नहीं है ? सचमुच ये जहाँगीरके दस्तखत है ?—मै यही जानना चाहती थी । मुझे अविश्वास हुआ। इस समय देखती हूँ, अविश्वासका कोई कारण नही है । अब मुझे कुछ कहना नहीं है । इस मरणमें मुझे कुछ क्षोभ नही है जहाँपनाह ! मैं मरती हूँ—अपने प्रियतमके हाथसे । यह मृत्यु भी मुझे प्रिय है । मै इस मृत्युको अपने जहाँगीरका दान समझ कर खुशीसे—शौकसे—गले लगाऊँगी। तो फिर मरनेसे पहले एक बार अपने प्रियतमके हाथ चूमे जाऊँ—उसी हाथको, जिसने मेरी मृत्युकी आज्ञा पर दस्तखत किये है। प्रियतम !—(जहाँगीरका हाथ चूमती है ।)

जहाँ०—नूरजहाँ ! ये दस्तखत मेरे नहीं है ।

नूर०—ये दस्तखत जहाँपनाहके नहीं हैं ?

जहाँ०—नूरजहाँ, तुमने सैकड़ो अपराध किये है, पर वे सैकड़ों अपराध भी मेरे निकट कुछ नहीं हैं । अपने प्राणोंसे भी प्यारे पुत्रकी हत्या और सम्राज्ञी रेवाकी मृत्यु भी जब मैने चुपचाप सह ली, तब तुम समझ सकती हो नूरजहाँ कि ये दस्तखत मेरे नहीं हैं। मेरे हाथने

ये दस्तखत अवश्य किये हैं, लेकिन असलमें ये दस्तखत महाबत-खाँके ही है।

नूर०—(महाबतखाँकी ओर देखकर) समझ गई! अब मुझको कुछ कहना नहीं है। महाबतखाँ तुम जीते।—जब तुमने जहाँगीरके हाथसे नूरजहाँकी मृत्युकी आज्ञा पर दस्तखत करा लिये—जो पृथ्वी-पर कोई नहीं करा सकता था—तब मेरी पूरी तरह हार हो गई। (महा-बतखाँकी ओर जरा सिर झुकाकर) मगर याद रक्खो महाबतखाँ, इस जयमें तुम्हारा कुछ गौरव नहीं है।—मै एक दुर्बल स्त्री ही तो हूँ। तुम वीर हो, तुम पुरुष हो। और मैं चाहे जो हूँ, स्त्री ही हूँ। इस जयमें तुम्हारा कुछ पौरुप नहीं है। मै सिर झुका कर अपनी हार स्वीकार करती हूँ। (जहाँगीरसे) तो जाती हूँ नाथ!—इस जीवनके राज्यसे मरणके देशमें; इस आलोकके लोकसे अन्धकारके गढ़ेमें; इस उत्स-वके मन्दिरसे सन्नाटेके जगत्में। बिदा होती हूँ—प्राणेश्वर!

(घुटने टेकती है।)

जहाँ०—(नूरजहाँको उठाकर और छातीसे लगाकर) नूरजहाँ—मेरे जीवनका प्रकाश! मेरे हृदयकी अधीश्वरी! मेरे इस जगत्का सर्वस्व!

नूर०—प्रियतमके प्रेमका प्रकाश मेरी मृत्युके मार्गको प्रकाशित करे!—प्राणेश्वर! मैं मरनेको नहीं डरती। किन्तु सच बात यह है कि मरनेके लिए मेरी इच्छा न थी। कौन मरना चाहता है? जो सदा रोगी रहता है, जो चिर-निर्वासित है, जिसका संसारमें कोई नहीं है—कुछ नहीं है, जिसे लोगोंने छोड़ दिया है, जिससे—अभिशाप देकर—ईश्वरने मुँह फेर लिया है, वह भी मरना नहीं चाहता। (काँपते हुए स्वरमें) मेरे तो सब कुछ था—अनुपम रूप, अतुल ऐश्वर्य, देवताके सदृश पति! मेरे सब कुछ था। जीनेकी साध मेरी अभीतक नहीं मिटी, भोग करनेकी अभिलाषा पूर्ण नहीं हुई, चाहनेकी चाह कम नहीं हुई!

नाथ ! प्रियतम ! जीवितेश्वर ! (जहाँगीरकी छातीमें सिर रखकर रोने लगती है ।)

जहाँ०—(गद्गद स्वरसे) महाबत !

महा०—सम्राट् !

जहाँ०—मेरा एक अनुरोध है !—

महा०—आज्ञा कीजिए सम्राट् । मै प्रतिज्ञा करता हूँ कि भारत-सम्राट्की कोई भी आज्ञा हो, उसे सम्राट्का राजभक्त प्रजाजन महाबतखाँ सिर झुकाकर पालन करेगा ।

जहाँ०—महाबतखाँ ! मैं तुमसे नूरजहाँके प्राणोंकी भिक्षा माँगता हूँ—देखो, वह रो रही है ।

महा०—वही हो सम्राट् !—सम्राज्ञी आप छुटकारा पागई !—सम्राज्ञी नूरजहाँ ! आपकी अमानुषी मनीषा, असाधारण रूप और विश्वविजयिनी शक्ति इतने दिनों तक जो नहीं कर सकी, आज दम-भरमें आपके आँसुओंने वही कर दिखाया ।



नूर०—नौकरकी तरह ! ठीक है !

जहाँ०—वह नित्य सबेरे आकर सिर झुकाकर मुझे सम्राट् और तुम्हें सम्राज्ञी कहकर सलाम करता है ।

नूर०—बड़े ही सुखमें हैं जहाँपनाह !

जहाँ०—सुखमे रहूँ—या दुःखमें रहूँ—कोई चारा नहीं है।

नूर०—नहीं ।

जहाँ०—क्या सोच रही हो ?

नूर०—सोचती हूँ, उपाय है कि नहीं ।

जहाँ०—नूरजहाँ !—क्यों दुःखकी कल्पना करके दुःख पाती हो ?—शासनका बोझ बड़ा भारी बोझ है !—साम्राज्य गया, जाने दो—मुझे इसका क्षोभ नहीं है ।"

(नूरजहाँ चुपचाप सोचती है ।)

जहाँ०—साम्राज्यका शासन, जो चाहे, करे । आओ, हम सुख-भोग करें । उसमें तो कोई बाधा नहीं देता ।

नूर०—नहीं देता, यह उसका अनुग्रह है । लेकिन जहाँपनाह—वह अनुग्रह शरद ऋतुके मेघकी तरह बड़ी ही खामखयाली है ! वह बरसनेकी अपेक्षा गरजता बहुत है ।

जहाँ०—मगर जब उपाय नहीं है तब उस बारेमें सोचनेसे क्या होगा नूरजहाँ ?

[द्वारपालका प्रवेश ।]

द्वार०—खुदावन्द ! सेनापति आपसे भेंट करना चाहते हैं ।

(जहाँगीरका प्रस्थान ।)

नूर०—(बाहर जाते हुए जहाँगीरकी तरफ देखकर, आँखोंकी ओट हो जाने पर एक लंबी साँस लेकर) अब और उपाय क्या है ! कुछ भी

समझमें नहीं आता। घटा उठ रही है! राह खोजे नहीं मिलती। —नूरजहाँ! बस, अब क्यों? लौटो! अब भी लौटो!—ना, अब लौट नहीं सकती। पहाड़की ऐसी जगह पर आगई हूँ कि यहाँसे चढ़नेकी बनिस्वत उतरना खौफनाक है। चलो, चलो, आगे बढ़ो नूर-जहाँ। अब भी शिखर पर चढ़ सकती हो। शतरंजके खेलमें वजीर गँवा दिया है; तो भी जीत सकती हो। खेले जाओ।

दूसरा दृश्य।

स्थान—काबुलका रास्ता।

समय—शामका झुटपुटा।

[महाबतखाँ मार्गके किनारे खड़े दूर ताक रहे हैं।]

महा०—अन्तको एक साम्राज्यका बोझ मेरे सिर पड़ गया।—यह तो मैंने चाहा नहीं था। इस ऐश्वर्यने आज एक जंजीरकी तरह मुझे बाँध रक्खा है। यह तंग कोठरीकी पत्थरकी दीवारकी तरह मानों मेरी साँसको बंद कर रहा है। घृणित कीड़ेकी तरह मानो मेरे शरीर पर रेंग रहा है। तो भी इसे छोड़नेका उपाय नहीं है। कैसा भारी बोझ है! तो भी इसे लादना होगा। बदला लेना चाहा था, सो ले लिया। किन्तु अब एक बड़े भारी कर्तव्यका बोझ मेरे सिर पर आ पड़ा है। राह चलते-चलते यह साम्राज्य हाथ लग गया है। इसका पालन करना होगा। राक्षसीके ग्राससे इसे बचाना होगा। वह सूर्य अस्त हो गया!—मैं भी खीमेमें जाऊँ। (जाना चाहते हैं। इसी समय कई एक लुटेरे आकर राह रोकते हैं।)

महा०—कौन हो तुम लोग?

१ लुटे०—हम काबुली हैं।

महा०—क्या चाहते हो ?

२ लुटेरा—यह सिर ।

(यह कहकर लुटेरे लोग आक्रमण करते हैं । महाबतखाँ युद्ध करते करते पीछे हटते जाते हैं । इसी समय कुछ सैनिकोंके साथ विजयसिंह प्रवेश करते हैं । काबुलियोंसे लड़ते लड़ते घायल होकर विजयसिंह गिर पड़ते हैं । महाबतखाँ मौका पाकर फिर आगे बढ़ते हैं । लुटेरे भाग जाते हैं ।)

विजय०—सेनापति—सेनापति—

महा०—क्या विजयसिंह—

विजय०—मैं साघातिक रूपसे घायल हुआ हूं । मेरी मृत्युमें अब देर नहीं है ।

महा०—क्या विजयसिंह ! उन्होंने तुम्हारी हत्या कर डाली ?

विजय०—कर डालने दीजिए, कुछ हानि नहीं है ! मैं अपने प्रभुके जीवनकी रक्षा करके मरता हूँ ।—मगर—मरनेसे पहले—एक बात कहे जाता हूँ—प्रभुके—जीवनको—लेनेके—लिए—एक—षड्यन्त्र—अब—बोला—नहीं जाता—साव—(मृत्यु)

महा०—(कुछ देर सोचकर) इसका बदला लूँगा ।—लेकिन यह सब क्या है ! काबुली लोग मुझ पर क्यों आक्रमण करते हैं ! कुछ भी कारण समझमें नहीं आता । मैंने तो इन लोगोंका कुछ अनिष्ट नहीं किया ।

[एक सैनिकका प्रवेश ।]

महा०—क्या है सैनिक ?

सैनिक—आपने सम्राट्के डेरे पर जो पहरा रख दिया था उसमेंके पाँचसौ सिपाहियोंको काबुली लोगोंने आकर मार डाला ।

महा०—इस बर्बर जातिकी इतनी मजाल ! अच्छी बात है !—रामसिंह ! मेरी सेनाको आज्ञा दो कि वह इस नगरके सब काबुलियोंकी हत्या कर डाले । इसी घड़ी यह हत्याकाण्ड शुरू कर दिया जाय ।

तीसरा दृश्य।

स्थान—सम्राट्‌का शिविर।

समय—रात।

[*अकेली नूरजहाँ*]

नूर०—हम सब इस संसारके खेलकी पुतली है! संसार कभी अत्यंत आदर करके हमें गोदमें उठा लेता है, और कभी अवहेलाके साथ पृथ्वी पर पटक देता है। संसार हमारी हँसी और रोने पर वैसे ही कान नहीं देता, जैसे बालक अपने खिलौनेके आनंद और रूठनेको समझ नहीं सकता। लेकिन खिलौनेको गोदमें लेनेसे क्या वह सचमुच ही नहीं हँसता? और घरके कोनेमें फेक देनेमें क्या सचमुच ही उसे दुःख नहीं होता? अथवा यह बात है कि मनुष्यके सुख दुःख पर ईश्वर ध्यान ही नहीं देता। उसकी सृष्टिके महान् उद्देश्यके बीच इनके लिए स्थान ही नहीं है। उसके भारी कारखानेमे मनुष्यका सुख दुःख उससे निकली हुई चिनगारी और धूम-राशिकी तरह है।—उधर उसका लक्ष्य नहीं है। कालचक्रकी लीक विश्व-घटना-मार्गको दलित करती चली जाती है—विश्वकी वेदनाकी ओर उसकी दृष्टि नहीं है।

[जहाँगीरका प्रवेश।]

जहाँ०—यह काहेका शोरगुल है!—एक भयंकर कोलाहल तुम्हें सुन पड़ता है न नूरजहाँ?

नूर०—हाँ सुन पड़ता है। जानते हैं जनाब, यह काहेका शोर है?

जहाँ०—काहेका है?

नूर०—यह मृत्युका आर्त्तनाद है। महाबतखाँकी आज्ञासे काबुलियोंकी हत्या हो रही है।

जहाँ०—काबुलियोंकी हत्या! क्यों?

नूर०—'क्यों ? ' सुनिएगा क्यों ? अफीमका नशा क्या उतर गया ?

जहाँ०—सुनूँ तो—क्यों ? इसका कारण ?

नूर०—इसका कारण यही है कि कई काबुलियोंने सन्ध्याके समय आज महाबतखाँ पर आक्रमण किया था और हम पर पहरा देनेवाले पाँचसौ सिपाहियोंको भी उन्होंने मार डाला था—यही कारण है ! विशेष कुछ नहीं !

जहाँ०—काबुलियोंने महाबतखाँ पर हमला क्यों किया ? और पहरे परके सिपाहियोंकी ही हत्या क्यों की ?

नूर०—उनके बुरे ग्रह ! वे यह तो जानते ही न थे कि महाबतखाँ ही सम्राट् हैं ! उन्होने सोचा होगा कि महाबतखाँ सेनापति मात्र हैं।

जहाँ०—मगर सेनापति पर ही उन्होंने क्यों हमला किया ?

नूर०—जनाब ! देखती हूँ, आप बहुत कुछ समझ गये हैं। तो फिर यह भी समझ लीजिए। मैंने ही काबुलियोको महाबतखाँकी हत्याके लिए उत्तेजित किया था।

जहाँ०—तुमने ! ! !

नूर०—हाँ मैने। जहाँपनाह तो मानों आकाशसे गिर पड़े !—मैंने उत्तेजित किया था।

जहाँ०—तुमने महाबतखाँको मारनेके लिए आज्ञा दी थी सम्राज्ञी ! उसी महाबतखाँको मारनेके लिए, जिसने तुम्हारे प्राणोंकी भिक्षा दी थी !

नूर०—वह भिक्षा मैने नहीं माँगी थी जनाब।

जहाँ०—नहीं। मैंने माँगी थी। मैंने अन्याय किया। तुम्हारा मरना ही अच्छा था।

नूर०—तो अब सम्राट्को उसके लिए पछतावा हो रहा है ?

[महाबतखाँका प्रवेश और बादशाहको बंदगी करना।]

जहाँ०—महाबतखाँ ! यह सब क्या है ? इतना शोरगुल क्यो मच रहा है ?

महा०—मैने काबुलियोंकी हत्या करनेकी आज्ञा दी है। उनकी हत्या हो रही है।

जहाँ०—हत्याकी आज्ञा क्यों दी है महाबतखाँ ?

महा०—मेरा अपराध नहीं है जहाँपनाह ! मैने इन लोगोका कुछ अनिष्ट नहीं किया, तो भी इन्होने—

[द्वारपालका प्रवेश।]

द्वार०—जहाँपनाह ! कुछ काबुली उमराव सम्राट्से मिलना चाहते है।

महा०—ले आओ। (द्वारपालका प्रस्थान।)

महा०—जहाँपनाह ! इन्होने मेरी हत्याके लिए गुडे लगा दिये थे। इन्होंने आपके ५०० राजपूत सैनिकोंकी हत्या कर डाली है।—मैने उसका दण्ड दिया है।

[उमराव लोगोंका प्रवेश।]

उमराव—भारत-सम्राट् और भारत-सम्राज्ञीकी जय हो।

जहाँ०—महाशयो ! आप लोग यहाँ किस मतलबसे आये हैं ?

१ उम०—भारत-सम्राट् इन पुर-वासियोकी हत्या रोकिए।

(सम्राट्के आगे घुटने टेकना, सम्राट् महाबतखॉकी ओर देखते है।)

नूर०—सम्राट् ये नहीं हैं। सम्राट् (महाबतखाँको दिखाकर।) ये है।

(उमराव लोग सन्नाटेमें आकर महाबतखाँकी ओर देखकर फिर जहाँगीरकी ओर देखते हैं।)

जहाँ०---सच है उमराव लोगो ! इन सेनापतिके ऊपर अत्याचार हुआ है। इनसे क्षमा-प्रार्थना करो। इस बारेमे मुझे कुछ अधिकार नहीं है।

१ उम०---सेनापति ! तो आप इन पुर-वासियोकी रक्षा कीजिए।

महा०---महाशयो ! यह अच्छी बात है ! मेरी हत्याका षड्यंत्र रचकर अन्तको निष्फल होकर, अब आप लोग मुझसे कृपाकी भिक्षा माँगने आये है। मेरी इस राजपूतसेनाके पाँच सौ जवानोने आप लोगोंका क्या बिगाड़ा था ?

१ उम०---हम इसका हाल कुछ नहीं जानते।

महा०--आप लोग कुछ नहीं जानते ?

२ उम०---सचमुच हम कुछ नहीं जानते। हमारी बात पर विश्वास कीजिए।

महा०---विश्वास नहीं होता।

३ उम०---वह आर्त्तनाद सुनिए। वह देखिए, उस नगरके कोनेमें धुआँ उठ रहा है। आपके सिपाही हम लोगोंके घरोंमे आग लगा रहे है।

महा०---बहुत ठीक कर रहे है।

४ उम०---सोचिए तो---जिनकी हत्या हो रही है उनमे कितनी ही बेचारी औरते, कितने ही धर्मात्मा वृद्ध, कितने ही असहाय बच्चे है। उन्होंने तो कुछ अपराध नहीं किया।

महा०---करे या न करें, इससे कुछ मतलब नहीं। आप लोग लौट जाइए। प्रार्थना करना निष्फल है।

उमराव०---(जहाँगीरके आगे घुटने टेककर)जहाँपनाह !

(जहाँगीर हाथोंसे मुँह ढँक लेते हैं।)

(कई काबुली औरतें दौड़ती हुई आकर जहाँगीरके पैरों पर गिर पड़ती है ।)

औरतें—जहाँपनाह रक्षा कीजिए—रक्षा कीजिए।

जहाँ०—महाबत।—

(महाबत चुप रहते है।)

१ औरत—हमारे बच्चोंको बचाइए।

नूर०—औरतो! सम्राट् ये नहीं हैं, (महाबतको दिखाकर) सम्राट् वे हैं।

औरतें—(महाबतखाँके पैरों पर गिरकर) जहाँपनाह! हम भिक्षा माँगती है—हमारे बच्चोंको बचाइए। बदलेमें हमारी जान लीजिए।

महा०—फरीद! जाओ, इस हत्याकाण्डको बंद कर दो। कहो, सम्राट्की आज्ञा है!—महाशयो, जाइए। हत्या बंद होनेकी आज्ञा मैंने भेज दी है।

(फरीद और औरतोंके साथ उमराव लोगोंका प्रस्थान ।)

महा०—शेरअली!

शेर०—जनाब!

महा०—खीमे उखाड़ो, सम्राट् अजमेरको लौट जायँगे; इस बर्बर जातिके नगरमें प्रवेश नहीं करेंगे।

(शेरअलीका प्रस्थान। महाबत वहीं टहलने लगते है।)

जहाँ०—(कुछ देर चुप रहकर) महाबत।

महा०—जहाँपनाह!

जहाँ०—यह पिस्तौल लो। मुझे मार डालो। अब यह सहा नहीं जाता।

महा०—समझ गया जहाँपनाह! मेरा इस तरह बे-रोकटोक आज्ञा देना जहाँपनाहको पसंद नहीं आसकता—यह जानता हूँ। मगर हुजूर

यह समझें कि मैं सम्राट्के अभिभावकके रूपसे आज्ञा देता हूँ। खुद सम्राट् नहीं बन बैठा हूं।

नूर०—सम्राट् और किसे कहते हैं महाबतखाँ? तुम विश्वासघात करके, हमें हमारे घरसे निकालकर, भीतरसे हमारे सामने ही घरका द्वार बंद कर, उसी घरके भीतर सिंहासन पर बैठ गये हो। तुम नमक-हरामी करके स्वामी और सेवकके सम्बन्धको उलटपलटकर, हमारे ऊपर हुक्म चला रहे हो! तुम सम्राट् अकबरके पुत्र जहाँगीरको अपना कैदी बनाकर उनके नामसे स्वेच्छाचार कर रहे हो—मन माने हुक्म जारी कर रहे हो।—सम्राट् और किसे कहते है महाबतखाँ?

(महाबत चुप रहते हैं।)

जहाँ०—तो भी जबतक तुम न्यायशासन करते रहे तबतक, महाबतखाँ मैने कुछ भी नहीं कहा। मेरे शासनको अन्याय-शासन कहकर मेरे हाथसे तुमने उसे ले लिया था,—तो भी—

महा०—आज्ञा कीजिए सम्राट्। "तो भी?"

जहाँ०—तो भी मैने ऐसा अन्याय कभी नहीं किया। मैंने एकके अपराधसे अनेककी हत्याका हुक्म कभी नहीं दिया। मैने न्याय-विचारमें अपनी प्राणोंसे भी प्यारी बेगमके लिए मृत्युदण्डकी आज्ञा पर दस्तखत कर दिये थे। फिर तुमसे मैने—मुझ—सम्राट्ने—हाथ जोड़कर उसके प्राणोंकी भिक्षा माँग ली थी। और तुम्हारा—तुम्हारा यही न्याय-विचार है!—मैं सम्राट् होकर यह अन्याय-विचार देख रहा हूँ!—कुछ उपाय नहीं!—नहीं महाबत, मुझे मार डालो। भारत-सम्राट् जहाँगीर घुटने टेककर तुमसे प्राणदण्डकी भिक्षा माँगता है।

(महाबतको पिस्तौल देते हैं।)

महा०—— जहाँपनाह, अपना साम्राज्य आप फेर लें ! आप इस समय वही सम्राट् है । मै आपकी प्रजा हूँ । मैने क्रोधमें आकर अपराध किया है । मुझे दण्ड दीजिए ।

(सम्राटके पैरोके पास तलवार रख देते हैं ।)

जहाँ०——महाबत ! यह क्या ! इतने उदार उच्चहृदय तुम हो ! (दमभर चुप रहकर) महाबत ! भ्रम और अपराध बीचबीचमें मनुष्य-मात्रसे हो जाता है किन्तु स्वीकार करके जो अपनी इच्छासे उस अपराधका दण्ड सिर झुकाकर स्वीकार कर सकता है, वह देवता चाहे न हो, मगर वही मनुष्य है । किन्तु——वाह वा, शाबास तुम्हारी इन्सा-नियतको ! सुभान अल्लाह !——महाबतखाँ, यह लो अपनी तरवार । मै तुम्हारे सब अपराधोको क्षमा करता हूँ ।

चौथा दृश्य ।

स्थान——आसफके घरका आँगन ।

समय——रात ।

[आसफ और कर्णसिंह खड़े हुए बातचीत कर रहे हैं]

आसफ——शाहजादा परवेज बंगालमें ही मर गये । उसके बाद ही सम्राज्ञीने सम्राट्से एक आज्ञापत्र लिखा लिया कि उनकी मृत्युके बाद शाहजादा शहरयार सम्राट् होंगे !——इसका कारण यही है कि शाहजहाँके सम्राट् होने पर नूरजहाँका प्रभुत्व चला जायगा, इस बातको वह अच्छी तरह जानती है ।

कर्ण०——शाहजादा शाहजहाँ कहाँ है ?

आसफ——गोलकुंडामें ।

कर्ण०——सम्राट्का रोग बहुत कठिन है क्या ?

आसफ—बहुत कठिन है।

कर्ण०—महाबतखाँकी खबर कुछ आपको मिली है?

आसफ—उड़ती हुई खबर है कि एकाएक राज्य छोड़कर फकीर होकर वे कहीं चल दिये है।

कर्ण०—आश्चर्य है।—इस महाबतखाँका चरित्र मुझे एक पहेली-सा जान पड़ता है!

आसफ—मैं उन्हें कुछ कुछ जानता हूँ। वे पत्थरकी तरह कठिन होने पर भी फूलसे भी बढकर कोमल है। उनका विचार वज्रके समान दृढ़ होता है, मगर स्त्रीजातिके एक बूँद आँसूसे भी उनका हृदय पसीज उठता है।

[इसी समय फकीरके वेशमें महाबतखाँका प्रवेश ।]

आसफ—तुम कौन? यह क्या!—महाबतखाँ है?

महा०—किसी समय था।

कर्ण०—आश्चर्य ह! आपहीकी बात हो रही थी सेनापति।

महा०—मेरा सौभाग्य।

आसफ—तुम एकाएक यहाँ किस इरादेसे आगये महाबतखाँ?

महा०—आपको क्या कुछ आपत्ति है? सम्राज्ञीके निकाले हुए महाबतखाँको क्या सम्राज्ञीके भाई आश्रय देना अस्वीकार करते है?—कहिए, मै लौटा जाता हूँ।

आसफ—सम्राज्ञीके बर्तावके लिए मुझे दोष न दो महाबतखाँ!—मै उसके लिए जिम्मेदार नहीं हूँ! और अगर खास मेरी बात पूछो महाबत, तो मै मुक्तकण्ठ होकर कह सकता हूँ कि भारतवर्षभरमें ऐसा कोई भी आदमी नहीं है जिस पर मैं महाबतखाँके सदृश भक्ति रखता होऊँ। मेरे घरमे क्या महाबत, मेरे हृदयमें आओ। (गलेसे लगाना।)

महा०—राणासाहब—मैं आपकी राजधानी उदयपुर गया था। वहाँ सुना आप आगरेमें हैं। इसीसे आपकी खोजमें आगरे आया हूँ।

कर्ण०—सेनापति !

महा०—अपने लिए मैंने आपसे छः महीनेका समय माँगा था। पेशगी तनख्वाहके तौर पर पाँचहजार राजपूत-सेना भी माँगी थी। सो सब मुझे मिला था। मेरा शेष जीवन आपके हाथ बिक चुका है!—आज्ञा कीजिए।

आसफ—आश्चर्य है! महाबत! तुम एक विचित्र पहेली हो!

महा०—कौन नहीं है?

आसफ—मगर तुम सबसे बढ़े हुए हो!

महा०—क्यों आसफ?

आसफ—तुमने इतना बड़ा साम्राज्य हाथमें पाकर छोड़ दिया!

महा०—छोड़ दिया।

आसफ—क्यों महाबत?

महा०—तबियत हट गई।

आसफ—हट गई!—इसीसे तुम सम्राट्को, साम्राज्यको, उस शेरनीके मुँहके सामने रख आये।

महा०—रख आया। उसमें मेरा क्या था! ईश्वरने इस जालको रचा है! वे ही इसको काटेंगे।

कर्ण०—महाबतखाँ, ईश्वर अपने हाथसे कोई जाल न तैयार करते हैं और न काटते है।—वे मनुष्यहीके द्वारा हर एक काम कराते है।

महा०—करावे। जिसके द्वारा इच्छा हो उससे वे इस जालको काटें। मेरा क्या है।

कर्ण०—नहीं महाबतखाँ, आपको ही यह जाल काटना होगा। आपको ईश्वरने जो शक्ति दी है सो ताले-कुंजीमें बन्द कर रखनेके लिए नहीं दी।

महा०—मै आपका किंकर हूँ। आज्ञा कीजिए।

कर्ण०—इस कारणसे मै नहीं कहता सेनापति! मैं इसी दम उस बन्धनसे आपको छुड़ाये देता हूँ। आपके निजके महत्त्व पर ही मुझे पूरा भरोसा है। उसी पर मै सब छोड़ता हूँ।

महा०—क्या करना होगा राणा साहब!

कर्ण०—इस निकम्मे सम्राट् जहाँगीरको उतारकर योग्य पुरुषको सिंहासन पर बिठाना होगा।

महा०—वह योग्य पुरुष कौन है?

आसफ—यह अवश्य है कि सम्राट्के किसी पुत्रको ही बिठाना होगा।

कर्ण०—निश्चय ही।

आसफ—तो शाहजहाँ और शहरयारमेसे चुन लेना होगा। शहरयारके सम्राट् होनेसे नूरजहाँका ही शासन रहेगा। दुर्बल शहरयार उनका दामाद है।

कर्ण०—मेरी सलाह है—शाहजादा शाहजहाँको सम्राट् बनाओ।

महा०—मेरी भी यही राय है।

आसफ—तो जान पड़ता है, सम्राट् जहाँगीरको गद्दीसे उतारनेकी जरूरत नहीं पड़ेगी। हकीमने कह दिया है कि वे महीने दो महीनेसे अधिक नहीं जी सकते! किन्तु नूरजहाँ बेगम शहरयारके लिए लड़ेगी। क्योंकि भविष्यमें शहरयार सम्राट् हो, यह बात उन्होंने सम्राट्से लिखा ली है।

महा०—अच्छी बात है! हम इसके लिए तैयार रहेंगे। इस समय मै बहुत थका हुआ हूँ।—आसफ, अपने घरमें आज ठहरनेके लिए जगह दोगे?

आसफ—यह कैसा प्रश्न है! महाबत! तुम मेरे भाई हो। आओ—भीतर आओ?—नही, ठहरो मै पहिले देख आऊँ!

(प्रस्थान।)

महा०—राणा साहब, आप आगरेके सिहासन पर बैठना चाहते है?

कर्ण०— मै!

महा०—हाँ! चाहूँ तो इस सुयोगमे नव-हिन्दू-साम्राज्यकी स्थापना कर सकता हूँ। पर मै मुसलमान हुआ हूँ! लेकिन जाने दो, जिसका उपाय नही है उसे सोचकर क्या होगा—आप आगरेके सिहासन पर बैठना चाहते है?—उस समय इसका कुछ खयाल ही नहीं हुआ।

कर्ण०—किस समय?

महा०—जब साम्राज्य छोड़कर आया।—तो भी अभी समय है। आप हिन्दू-साम्राज्यका उद्धार करना चाहते है?

कर्ण०—नहीं सेनापति।

महा०—क्यो राणा?

कर्ण०—कारण, इस साम्राज्य पर हम हिन्दुओका फिरसे अधिकार हो जायगा तो भी हम उसे बनाये न रख सकेंगे।

महा०—क्यो?

कर्ण०—कारण, मैने सोचकर देखा है कि जबतक हमारी जातिके लोग मनुष्य न बन सकेगे, तबतक हिन्दू-साम्राज्य विकारग्रस्त पुरुषका स्वप्न ही है। हमारी जाति बहुत ही ओछे हृदयकी होगई है खाँ साहब। भाईकी भलाईकी चेष्टा करना दूर रहा, हम भाईका भला

तक नहीं देख सकते । अन्य जातिका कोई अगर हमको पीस डाले तो हम उसे सिर झुका कर सह लेंगे । लेकिन अपने ऊपर अपने जाति-भाईका न्याय-शासन भी हम न सह सकेंगे । मेरे सम्राट् होनेसे हिन्दुओंकी आँखे लाल हो उठेंगी । फिर देशमे रक्तकी नदियाँ बहेंगी । इसकी अपेक्षा गैरोंके शासनमे वे बड़े मजेसे है ।

महा०—सच बात है । नहीं तो हिन्दुओंकी यह दुर्दशा क्यो होती !

[आसफका फिर प्रवेश ।]

आसफ—आओ महाबत ।

महा०—बन्दगी राणा साहब ।

कर्ण०—बन्दगी सेनापति । बन्दगी मन्त्री महाशय ।

आसफ—बन्दगी राणा साहब ।

(महाबत और आसफ एक ओरसे और कर्णसिंह दूसरी ओरसे जाते है ।)

पाँचवाँ दृश्य ।

स्थान—गोलकुंडा ।

समय—रात ।

[खादिजा अकेली गाती है ।]

गजल ।

निपट मेरा है तो भी जान पड़ता—वह न मेरा है ।
निहारूँ नित्य, पर परिचय न अबतक उसका पाया है ॥ निपट० ॥
हृदयके बीच है पर पास पाती हूं नही उसको ।
उसीकी खोजमें अपनेको भी मैंने गँवाया है ॥ निपट० ॥
करूँ मैं प्यार जितना ही, समझ पडता, न है काफी ।
मिले जो प्यार, उससे भी अधिक अभिलाष आशा है ॥ निपट० ॥
मिले पलमें, फिर यक पलमें न मिलता है—अजब रँग है ।
मिलनमें खो भी जाता है, विरहमें मिल ही जाता है ॥ निपट० ॥

शाह०—(प्रवेश करके) खादिजा ! पिताकी मृत्यु हो गई ।

खादि०—मृत्यु हो गई ?

शाह०—मृत्यु हो गई,—यह लो, पढ़ो अपने पिताका पत्र।

(खादिजा पत्र लेकर पढ़ती है।)

शाह०—इस दुष्ट, उच्च आशा रखनेवाली स्त्रीने अन्तको पिताकी भी जान ले ली। पिताको विलासमें डुबाकर, अचेत बनाकर, अन्तको उसने उन्हें जीवनके मध्याह्नमे ही मार डाला।

खादि०—सम्राज्ञीने तो हत्या नहीं की।

शाह०—इसे हत्याके सिवा और क्या कहा जा सकता है! उसने जैसे शेरखाँको मारा था, वैसे ही पिताको भी मारा।

खादि०—साम्राज्यके लिए ?

शाह०—हाँ, साम्राज्यके लिए। (लंबी साँस लेकर)—देखो खादिजा—तुम्हारे पिताने लिखा है कि नूरजहाँ साम्राज्यके लिए युद्ध करेगी। वह सहजमे साम्राज्य न छोड़ेगी।

खादि०—क्या होगा साम्राज्य लेकर स्वामी! चलो हम कहीं दूरपर किसी जंगलके पासके गाँवमें रहें। वहाँ किसान बनकर सुखसे जीवन बितावें। एक भूमिखण्डके लिए मारकाट क्यों करोगे ?

शाह०—खादिजा! अब भी तुम वही बालिका हो।—पैरों पड़ता हूँ—विनय करता हूँ—जरा होश सँभालो।

खादिजा—हम अगर कबूतरकबूतरी होते!

शाह०—पर मैं तो कबूतर नहीं होना चाहता। अब चलो, हम आगरे चलनेके लिए तैयार हो।

खादि०—नाथ! (शाहजहाँका हाथ पकड़ती है।)

शाह०—इस समय चलो। प्रेमकी बातचीत फिर होगी।

(दोनोंका प्रस्थान)

छट्ठा दृश्य ।

स्थान—नूरजहाँका कमरा ।

समय—रात ।

[नूरजहाँ अकेली खड़ी है ।]

नूर०—नूरजहाँ ! इस मृगतृष्णाके पीछे इतने दिनोंतक तो फिरी; मगर पाया क्या ? कुछ नहीं । तब भी जा रही हूँ !—लेकिन आज समझमें आ गया कि अब मै अपनी शक्तिसे नहीं चल रही हूँ । एक पुराना अभ्यास मुझे कठपुतलीकी तरह चलाये लिये जारहा है । चलती हूँ;—क्योंकि चलनेके सिवा और उपाय नहीं है ।—मरने जा रही हूँ;—तब भी चलती हूँ ।

(शहरयारका प्रवेश ।)

शहर०—मुझे बुलाया था सम्राज्ञी ?

नूर०—हाँ शहरयार !—सम्राट् मरनेसे पहले तुम्हें अपना उत्तराधिकारी बना गये है । यह उनका आज्ञापत्र है । तुम सेनासहित आगरेमें जाकर वहाँके राजसिहासन पर अधिकार कर लो ।

शहर०—मैं ?

नूर०—हाँ तुम । मेरे भाई आसफ, महाबतखाँ और मेवारके राणा एक हो गये है । वे शाहजहाँके लिए युद्ध करेंगे । शाहजहाँ अभीतक बहुत दूर है । उन लोगोने अभी खुसरूके छोटेसे बालकको सिंहासनके लिए खड़ा किया है । तुम जाओ उन लोगोंके साथ युद्ध करो ।

शहर०—मैं युद्ध करूँगा !

नूर०—कुछ मत कहो ।—जाओ । मैं सेनाको आज्ञा दिये देती हूँ ।　　　　(प्रस्थान ।)

शहर०—मै सम्राट्! सोचकर भी कलेजा काँप उठता है। मैं युद्ध करूँगा!—यह तो मैने कभी सोचा नहीं! कर सकूँगा?— (सोचता है।)

[लैलाका प्रवेश।]

लैला—शहरयार!

शहर०—लैला!

लैला—तुम साम्राज्यके लिए युद्ध करने जाते हो क्या?

शहर०—हाँ जाता हूँ लैला।

लैला—तुम महाबतखाँके साथ युद्ध करोगे?

शहर०—इसमे आश्चर्य क्या है!

लैला—युद्ध काहेसे करते है, भला बतलाओ तो! युद्ध किसे कहते है, जानते हो?

शहर०—लैला तुम मेरी हँसी कर रही हो। मै तुम्हारा स्वामी हूँ यह जानती हो?

लैला—इसी गौरवको तुम नहीं सँभाल सकते हो। इस पर सम्राट् होनेसे तो बिलकुल ही नहीं सँभाल सकोगे।—बोझेसे दब कर एकदम मर जाओगे।

शहर०—नहीं! मैने खूब सोच-समझ लिया है। मै युद्ध करूँगा। क्यों न कर सकूँगा? मै क्या मनुष्य नहीं हूँ? तुम सदासे मेरा निरादर करती हो। मैं दिखा दूँगा कि मै उतना नाचीज नहीं हूँ, जितना तुम सोचती हो।—मै युद्ध करूँगा। मै सम्राट् होऊँगा।

लैला—स्वामी! तुम इस कुचक्री स्त्रीके फंदेमें न पड़ो। मारे जाओगे। इस इरादेको छोड़ो।

शहर०—सो क्यों! मै सम्राट् हुआ हूँ। पिता मुझे स्वयं सम्राट् कर गये हैं। अब केवल सिंहासन पर बैठना ही बाकी है। मै सिंहासन पर बैठने जा रहा हूँ। अगर कोई बाधा देगा, युद्ध करूँगा।

लैला—मेरे भोलेभाले स्वामी !—सुनो ! भागो ! इस चक्रमें अगर तुम एक बार पड़ गये तो फिर मै तुमको बचा नहीं सकूँगी । मेरी माताका फंदा राक्षसीका ग्रास है ! सावधान !

(नूरजहाँका प्रवेश ।)

नूर०—क्यो लैला ! तुम शहरयारको मेरे खिलाफ भड़का रही हो ?

लैला—हाँ, अपने स्वामीको बचानेका मुझे अधिकार है ।

नूर०—बचानेका अधिकार है ?

लैला—हाँ बचानेका अधिकार है ।—हाय नारी ! अभी तक भी क्या तुम्हारी क्षमताकी आशा नही मिटी ? अभीतक तुम मेरे स्वामीको अपनी मुट्ठीमें रखकर उसकी आड़में शासन करना चाहती हो ?—सोचो तो यह सदाका रोगी, शिथिलशरीर महाबतखाँके विरुद्ध युद्ध करने खड़ा हो सकेगा ?

नूर०—मैं हूँ ।

लैला—तुम ?—अब तुम्हारी क्या शक्ति है ! तुम्हारी शक्ति जो पुरुष था वह आज मिट्टीके नीचे पड़ा हुआ है !—उसमें हाथ-पैर हिलानेकी भी ताब नहीं है !—आज तुम्हारी ही कुयन्त्रणासे सेनापति महाँबतखाँ, राणा कर्णसिंह, शाहजादा शाहजहाँ, और तुम्हारे सगे भाई आसफ तुम्हारे विरुद्ध हैं । तुम हो ? अब दर्प नहीं सोहता ।—नहीं मा, अपने स्वामीको मैं तुम्हारे फंदेमें न पड़ने दूँगी ।

नूर०—लैला, तुम्हारी इतनी मजाल कि तुम मेरे विरुद्ध खड़ी होओ !

लैला—मेरा इरादा अच्छा है, और उसीसे मेरी इतनी मजाल है ।

नूर०—जानती हो, मैं सम्राज्ञी हूँ ?

लैला—थीं ।—वह दिन चला गया नूरजहाँ ! अब सम्राज्ञी कोई है तो मैं हूँ ।—सुनो स्वामी ! तुमने एक दिन कसम खाई थी कि मैं

कभी सम्राट् न होऊँगा। सो तुम कभी न होओगे; मै जानती हूँ हो न सकोगे। अगर मेरे बारबार मना करने पर भी तुम इस उच्च आशा रखनेवाली औरतके कूटचक्रमें पड़ जाओगे तो फिर मै तुम्हारी रक्षा न कर सकूँगी। याद रहे। (प्रस्थान)

नूर०—शहरयार ! तुम मेरी इस ढीट मुँहजोर लड़कीकी बात मत सुनो। तुम सम्राट् होओगे। मै बहुत दिनोंसे भारतका शासन करती आ रही हूँ। मै तुम्हारी सहायता करूँगी। जहाँगीरके बनाये सम्राट् तुम हो। तुम्हे कुछ डर नहीं है। जाओ। सेना लेजाकर आगरे पर अधिकार करो। मै और भी सेना लेकर पीछे आती हूँ!—जाओ!

(शहरयारका प्रस्थान।)

नूर०—(कुछ देरतक अकेले पत्थरकी मूर्तिकी तरह खड़े रहकर फिर धीरे धीरे) वृथा ! वृथा ! वृथा ! हायरे मूढ़ मनुष्य !—तू हँसता हुआ जय डंका बजा कर सर्वनाशकी ओर दौड़ा जारहा है ! जीता है केवल मृत्युके साथ और भी घनिष्ठता स्थापित करनेके लिए ! सुखके लिए जितना चक्कर काटता है उतना ही कष्ट पाता है !!!—यह जीवन एक जीती हुई मृत्यु है। हँसी हाहाकारका रूपान्तर है। प्रकाश अन्धकारका आर्त्तनाद है।—मै खूब समझ रही हूँ कि यह तैयारी वृथा है। मेरा पतन सामने ही है। एकदम शैल-शिखरके किनारे पर खड़ी हूँ। गहरे भँवरके बीच गिर रही हूँ। अब रक्षा नहीं है। विनाशकी लहरोंका कल्लोल सुन रही हूँ। बहुत ही निकट आगई हूँ। होनहारकी अदृश्य तर्जनी (अँगूठेके पासकी उँगली) पास ही लक्ष्य कराती मानों मुझे बुलाकर कह रही है कि 'यहाँ पर तुम्हारा सर्वनाश है; तब भी तुम्हें यहीं पर जाना होगा'। मैं ध्वंसके ओठोंमें एक बर्फके समान कठिन तीक्ष्ण हँसी देख रही हूँ ! इस हँसीका अर्थ यही है कि 'मैं तुम्हारी राह देख रहा हूँ।—आओ।'

सातवाँ दृश्य ।

स्थान—उदयपुरका बादल महल ।

समय—प्रातःकाल ।

[महाबतखाँ, बंदरराज, कर्णसिंह और कर्मचारी लोग । सब मानों किसीकी राह देख रहे है । पास ही बाजा बजता है । शाहजहाँ प्रवेश करते हैं ।]

सब लोग—सम्राट् शाहजहाँकी जय हो !

महा०—जहाँपनाह !—यह शत्रुपक्षका झंडा है—और यह सम्राट् जहाँगीरका मुकुट है ! (शाहजहाँको देते हैं ।)

शाह०—मेरे आनेके पहले ही तुमने मेरे लिए साम्राज्य जीत रक्खा है महाबतखाँ ! तुम्हे यथोचित पुरस्कार देनेकी योग्यता मुझमें नहीं है ! जो सम्मान आज मै प्राप्त करता हूँ, वह सम्मान तुमने हाथमें पाकर भी मिट्टीकी तरह राहमें फेक दिया !

कर्ण०—जहाँपनाह—इनका काम सम्राट् होना नहीं है, इनका काम सम्राट् बनाना है ।

शाह०—सम्राज्ञी पकड़ ली गई ?

महा०—हाँ जहाँपनाह !

शाह०—उन्हें छोड़ दो महाबतखाँ ।—मै उनके भरण-पोषणके लिए वार्षिक १०००० अशर्फीकी वृत्ति नियत करता हूँ ।

महा०—जो आज्ञा जहाँपनाह ।

शाह०—राज-परिवारके और सब लोगोंके लिए क्या बन्दोबस्त हुआ है ?

बंदरराज—खुदावन्द !—वह सब बंदोबस्त मैं कर आया हूँ ।

शाह०—तुम बंदरके राजा वह बन्दोबस्त कर आये हो ! सर्वनाश ! क्या बंदोबस्त किया है, सुनूँ तो ।

राजा—खुसरूके दोनों पुत्रोंकी हत्या करा डाली है। परवेजके दोनों पुत्र पहले ही मर चुके हैं। उनकी हत्या करनेकी जरूरत नहीं पड़ी। शहरयारके पुत्रको गला दबा कर मार डाला है। और शहरयारको अन्धा कर दिया है। उसको अब कभी सम्राट् न होना होगा।

शाह०—(सिर पर जैसे वज्र गिर पड़ा हो, इस तरह सन्नाटेमें आकर, फिर भग्न स्वरमें) यह क्या! यह सब सच कह रहे हो!—या झूठ है!—राजा!

राजा—सच है खुदावन्द। बंदा जहाँपनाहसे झूठ किस तरह बोल सकता है?

शाह०—उः कैसा भयानक काण्ड है! कैसा पिशाचका काम है!—यह सब किसने किया?

राजा—बन्देने।

शाह०—नूरजहाँ बेगम! तुमने अनेक पाप किये है। किन्तु सब पापोंसे बढ़कर पाप यह तुमने किया जो इस पापीको अपनी क्षमतासे घेरे रहकर अब तक रक्षा करती रहीं। इतनी हत्या! इतनी पिशाचोंकी ऐसी निठुराई! मैं कल्पना भी नहीं कर सकता था कि यह सब संभव है।—पहरेदार! इसे (राजाको दिखाकर) बाँधलो।

(पहरेदार बाँधता है।)

राजा—हैं—जी खुदावन्द!

शाह०—चुप!—राजा! तूने सोचा था कि अपने भाई और भतीजोंकी हत्यासे मैं खुश होऊँगा?—पृथ्वी पर कोई भी होता है?—वे चाहे हजार शत्रुता करें।—अपने भाई, अपने भतीजे!—उः—राजा तुझे क्या सजा दूँ? मृत्यु तेरे लिए काफी सजा नहीं है। तेरे योग्य दण्ड अभीतक निकला ही नहीं।—मगर इसका दण्ड मृत्यु ही हो!—

मुझसे सोचा भी नहीं जाता। पहरेदार! इसे बाहर ले जाओ। और महा-बतखाँ! इसे अभी गोली मार दो।

महा०—अब तक और किसी शाही हुक्मकी तामील इतनी खुशीके साथ मैंने नहीं की जहाँपनाह!

(दोनों सिपाही राजाको पकड़कर बाहर ले जाते है। महाबतखाँ भी साथ जाते हैं)

शाह०—बदनसीब बच्चो! अभागे भाई शहरयार!—इसके लिए मैं अपराधी नहीं हूँ।

(बाहर गोलीके दागनेका शब्द। राजाका आर्त्तनाद और पृथ्वी पर गिरनेका शब्द।)

शाह०—जाने दो!—पृथ्वीपरसे एक पापका भारी बोझ उठ गया।

कर्ण०—सम्राट्!—जो हो गया उसके लिए अब उपाय नहीं है अब जो लोग जीते है जहाँपनाह, उनका यथोचित प्रबन्ध कीजिए।

शाह०—राणा काहेसे और किस तरह आपका ऋण चुकाऊँ। जब सम्राज्ञीकी सेना मेरा पीछा किये हुए थी तब आपने मुझे आश्रय दिया और मेवारकी सारी सेना लेकर मेरे लिए युद्ध किया।

कर्ण०—क्योंकि मै समझा था, धर्मके पक्षमें होकर अधर्मके विरुद्ध युद्ध कर रहा हूँ।

शाह०—उसके बाद इतने दिनोंतक आपके यहाँ सर्वथा सुखसे रहा। यह महल, यह सिंहासन, यह मसजिद आपने मेरे ही लिए बनवा दी।—राणा! मेरे चले जाने पर मेरी यादगारके तौर पर क्या आप इन चिह्नोंको बना रहने देंगे?

कर्ण०—अवश्य। जबतक कालके हाथोंसे इनकी रक्षा हो सकेगी, ये बने रहेंगे सम्राट्!

शाह०—यह मसजिद ! यह तो हिन्दू धर्मके विरोधी विधर्मीकी मसजिद है।

कर्ण०—हिन्दू लोग आज पतित होने पर भी इतने हीन नहीं हुए है जहाँपनाह। जबतक मेवारके राजवंशमें चिराग जलानेवाला कोई भी रहेगा तबतक इस मसजिदमें हररोज सायंकालको चिराग जलानेके लिए तेलकी कमी नहीं रहेगी।

शाह०—धन्य है हिन्दुओंकी उदारता। और मै मुसलमान होने पर भी मेरे शरीरमे तीन हिस्सा हिन्दू-रक्त है!—महाराणा, अपनी पगड़ी जरा दीजिए तो।

[राणा पगड़ी उतार कर देते हैं। शाहजहॉ अपनी पगड़ी राणाको पहनाकर उनकी पगड़ी आप पहनते हैं।]

शाह०—कर्णसिंह! आजसे हम दोनों भाई हैं; और मैं सदा हिन्दू और मुसलमानोको भाई-भाई समझता रहूँगा।

आठवाँ दृश्य।

स्थान—यमुनातटपरका शाही महल।

समय—रात।

[पश्चिम आकाशमें काले बादलका टुकड़ा देख पड़ता है। हवा बंद है। एक आँधी उठनेकी पूर्वावस्था है। आसफ और खादिजा दोनों खड़े बातचीत कर रहे हैं।]

खादिजा—अब्बा, मुझे तो जान पड़ता है, सम्राज्ञी पागल होगई हैं। वे एकान्तमे टहलती हैं, हँसती है आप-ही-आप बकती हैं। और एक आश्चर्य यह देखती हूँ कि वे बीचबीचमें मुट्ठी बाँधती हैं, बोलती हैं और एकटक उसीको ताका करती हैं।

आसफ़—हाय बदनसीब बहन ! उसकी क्षमता चली गई है। वह अब एक असीम शून्यताका अनुभव करती है।—इस समय वह कहाँ है ?

खादिजा—माळूम नहीं । देखूँ, जाकर खोजूँ।—ओः कैसी काली घटा छाई है ! आँधी उठेगी ।

(इसी समय अन्धे शहरयारका हाथ पकड़कर
लैला वहाँपर उपस्थित हुई ।

लैला—मामा, आप यहाँ है।

आसफ़—क्यों लैला ! साथमे कौन है ?

लैला—मेरे अंधे स्वामी ।

आसफ़—शाहजादा शहरयार ?—बेचारे शाहजादे, तुमको उन लोगोंने अन्धा कर दिया ?

शहर०—हाँ मामा ! मुझे उन्होने अन्धा कर दिया है। यह जगत् अब मेरे निकट असीम एकाकार है—केवल एक गाढ़ा काला रंग !—सूनसान !—इसके सिवा और कुछ नही । आज मेरे निकट पृथ्वी, आकाश, नदी, पर्वत, वृक्ष, पक्षी, सब—एकसे हैं; सब बराबर हैं। उः—मामा, वे कैसे निष्ठुर हैं; जो मनुष्यको अन्धा कर देते है ।

लैला—(रुँधे हुए रोनेसे काँप रहे स्वरमें) वे कैसे निठुर है !

शहर०—लैला, तुमने मुझे मना किया था, मैंने सुना नहीं ! मैंने कसम खाई थी—फिर उसे तोड़ दिया । उसीका यह फल है ।

लैला—उन सब बातोंको याद करना व्यर्थ है प्रियतम ! अतीत—अतीत है । भविष्य—भविष्य है ।

शहर०—मेरा भविष्य !—मेरा भविष्य एक असीम निराशा है; विराट् विषाद है; जीवन-व्यापी अन्धकार है । सबेरे सूर्यकी सुनहली

किरणें अब मेरे सामने नाचती हुई नहीं आवेंगी; आधी रातका चन्द्रमा अब आकाश-सागरके ऊपर होकर चाँदनीकी 'पाल' उड़ाता जाता नहीं देख पड़ेगा; नव वसन्तकी अवाईसे हरी भरी पृथ्वीकी शोभा अब नहीं देख देकूँगा।—सौन्दर्य केवल स्मृतिमात्र रह गया, लैला।

लैला—दुःख क्या है नाथ! मै तुम्हारे पास हूँ। वे तुम्हारा सब छीन ले सकते हैं, पर तुम्हारी लैलाको कोई नहीं छीन ले सकता। दुःख क्या है? मैं हूँ। मैं तुम्हें विश्वके सौन्दर्यकी कहानी सुनाऊँगी। और उससे भी बढकर जो मनोहर है, जो आँखोंसे देखा नहीं जाता, केवल हृदयसे जिसका अनुभव किया जाता है, वही तुमको सुनाऊँगी! मै तुम्हें सुनाऊँगी—माताका स्नेह, स्त्रीका प्रेम, कन्याकी सेवा, भक्तकी भक्ति, कृतज्ञकी कृतज्ञता, त्यागीका त्याग! कुछ दुःख नहीं है नाथ! मै हूँ—

शहर०—मेरे लिए यही एक सुख है लैला! मैने आँखें खोई है, मगर इतने दिनों बाद तुम्हे पाया है। मेरा कुछ भी तुमने कभी सुंदर नहीं देखा। आज—

लैला—आज तुम सर्वांगसुंदर हो। तुममे जो कुछ कालिमा मैं देखती थी उसे सम्राट् जहाँगीरकी मृत्यु धो ले गई। मृत्युके बाद अब उनसे मेरी कुछ भी शत्रुता नहीं रही। और—तुम आज बहुत ही दीन हो, बहुत ही असहाय हो। आज मै तुम्हें जीसे चाहती हूँ। इतना मैंने तुम्हें कभी नहीं चाहा। आज तुम्हारे समान सुंदर कौन है।

आसफ—लैला! मैने सुना है, स्त्री देवी होती है। सम्राज्ञी रेवा वही देवी थीं। किन्तु उनकी वह स्वर्गकी कहानी है। हम उसे अच्छी तरह ग्रहण नहीं कर सकते। किन्तु मनुष्यलोकका संगीत स्वर्गकी कहानीको भी छुपा देता है—यह तुमने दिखा दिया!

खादिजा---वे सम्राज्ञी आ रही हैं ! वह देखो आप-ही-आप क्या बकती आरही है ।

नूरजहाँ---(आप-ही-आप बकती हुई प्रवेश करती है)---उः कैसी क्षमता थी ! कैसे उसे मिटा दिया । खतम कर दिया । अब कुछ नहीं है, (मुट्ठी बाँधकर फिर खोलती है) यह देखो (सबको हाथ दिखाती है) ।

आसफ---सम्राज्ञी !---बहन---

नूर०---आसफ है ? एक किस्सा सुनोगे ! सुनो । एक था राजा, उसके थी एक रानी । राजा रानीको बहुत चाहता था । मगर रानी---वह तो मनुष्य थी नहीं । वह थी एक राक्षसी ! माया जानती थी । उसने राज्यको मायापुरी बना डाला ! फिर उस राजाके लड़केको खाया; राजाको खाया; खाकर खुद राज्य करने लगी । उसके बाद राजाका जो एक लड़का उस राक्षसीके ग्राससे बचकर विदेश भाग गया था वह बड़ा हुआ । बड़ा होकर एक दिन डंका बजाता हुआ आया ! उसने आते ही राक्षसीके बाल पकड़कर उसे दूर कर दिया !---खेल मिट गया ।

आसफ---नूरजहाँ !

नूर०---कौन नूरजहाँ ? वह तो नहीं है । वह तो मर गई ।

आसफ---सुनो मेहर---

नूर०---मेहर ! वह भी मर गई । वे दोनों मर गईं । मेहरुन्निसा भी और नूरजहाँ भी ।

आसफ---नहीं बहन---

नूर०---'नहीं' कहनेसे ही विश्वास कर लूँगी ! मैंने अपनी आँखों-से उन्हें मरते देखा है । मेहरुन्निसा थी शेरखाँकी स्त्री ! नूरजहाँ थी जहाँगीरकी स्त्री । मेहरुन्निसाने मारा शेरखाँको; नूरजहाँने मारा जहाँगीर-को । (मेघगर्जन) वह सुनो जहाँगीरके कण्ठका स्वर ! कैसा करुण

है !—काहेसे मारा ?—रूपसे ! रूपसे !—नहीं तो वे न मरते ! कोई भी न मरता ! कोई भी न मरता !—अपने रूपको सँभाल नहीं सकी ! दोनोको मारकर फिर विष खाकर आप मर गई।—मेहरुन्निसा भी मर गई, नूरजहाँ भी मर गई।

आसफ—पागलपनमे भी एक सिलसिला है।

नूर०—मैंने मना किया था आसफ (आसफके कन्धे पर हाथ रखकर) —नहीं सुना। मर गई। मरेगी नहीं ? विष खालिया—मरेगी नहीं ?

खादिजा—फुफी !

नूर०—कौन ! (भय और सम्मानके साथ)—ओ ! बेगम साहबा ! सलाम ! (सलाम करके पीछे हटकर) सलाम ! (मेघगर्जन) वह !—शेरखाँके गलेकी आवाज है ! कैसी—गंभीर है !—सुनती हो ?

खादिजा—फुफी आँधी उठ रही है। भीतर चलिए।

नूर०—यह आँधी नही है—यह शेरखाँकी झिड़की है। उसने जिन्दगीमें कभी झिड़की नहीं दी। अब क्यो झिड़कता है ?

लैला—मा—भीतर चलो। आँधी उठ रही है।

नूर०—उठे ! मूसलधार वर्षा हो। मै खड़ी होकर वही देखूँगी !—कैसी सुन्दर है ! कैसी भयंकर है ! (दोनों मुट्ठी बाँधकर सामने दोनों हाथ बढ़ाकर बार बार चमकती हुई बिजलीकी ओर एकटक देखती है।)

खादि०—ओः कैसी तेज हवा चल रही है। आँधी उठी है।

आसफ—ओः कैसी बिजली चमक रही है !—कैसा मेघ गरज रहा है !

लैला—मा मेरी—आओ। (नूरजहाँका हाथ पकड़ती है।)

नूर०—(लैलाके कन्धे पर हाथ रखकर) लैला ! मेहरुन्निसाको पहचानती थी ?—वह थी तेरी मा। और यह नूरजहाँ थी तेरी सौतेली

मा । और मै ?—मै तेरी कौन हूँ ?—मै तेरी कोई नहीं हूँ । मैं तेरी कोई नहीं हूँ । [illegible]

(रोती है।)

लैला—ना मा ! तुम्हीं मेरी मा हो ! नूरजहाँ या मेहरुन्निसा कोई मेरी मा न थी तुम्हीं मेरी मा हो ।

नूर०—सच ?—ओः कैसा आनन्द है ! सच ? तूने कैसे जाना लैला ! (मेघगर्जन) वह फिर सुन !!!

लैला—नूरजहाँ और मेहरुन्निसा, दोनो ही सौभाग्यगर्विता, उच्च आशा रखनेवाली, सुखमें मग्न स्त्रियाँ थीं । उनको तो बेटीकी जरूरत थी ही नहीं । मगर तुम मेरी दुखिया मा हो !—वह मा हो, जिसका सब ऐश्वर्य लुट गया है और जो क्षोभसे नम्र हो रही है ! तुम्हें इस समय एक बेटीकी जरूरत है मा ! और इन मेरे अन्धे पतिको स्त्रीकी जरूरत है । आज तुम दोनोको जितना मै चाहती हूँ उतना और कभी नहीं चाहा । अब मै तुम्हारी ही हूँ । और किसीकी नहीं हूँ । अच्छा तो (एक हाथसे शहरयारका और दूसरे हाथसे नूरजहाँका हाथ पकड़ कर) आओ मा ! आओ मेरे स्वामी ! अपनी समवेदनाके आँसुओंसे नित्य तुम्हारे दुःखके घावोको धोती रहूँगी ।—यहीं पर लड़कीका काम है । यहीं पर पत्नीका साम्राज्य है ।

यवनिका पतन ।

